दंसणमूलो धम्मो

आत्मधर्म

श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) का मुखपत्र

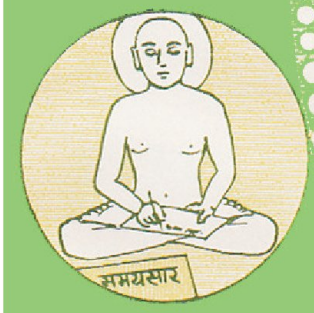

जो-जो देखी वीतराग ने,
सो-सो होसी वीरा रे।
बिन देख्या होसी नहिं क्यों हो,
काहे होत अधीरा रे॥
— भैया भगवतीदास

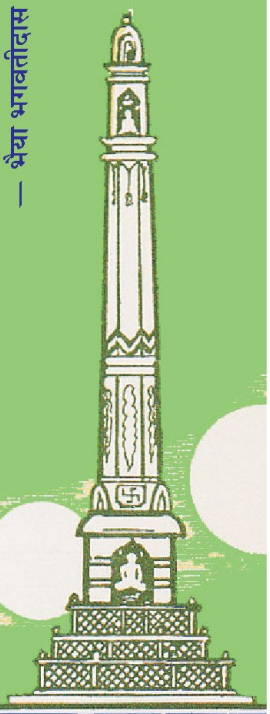

सम्पादक : डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
कार्यालय : टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४

वर्ष ३४ : अंक ९ [४०५] मार्च, १९७९

आत्मधर्म [४०४]

[हिन्दी, गुजराती, मराठी तथा कन्नड़ — इन चार भाषाओं में प्रकाशित
जैन समाज का सर्वाधिक बिक्रीवाला आध्यात्मिक मासिक]

संपादक :
डॉ० हुकमचन्द भारिल्ल
प्रबंध संपादक :
अखिल बंसल
कार्यालय :
श्री टोडरमल स्मारक भवन
ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (भावनगर-गुजरात)
शुल्क :
आजीवन : १०१ रुपये
वार्षिक : ६ रुपये
एक प्रति : ५० पैसे
मुद्रक :
सोहनलाल जैन
जयपुर प्रिण्टर्स, जयपुर

क्या

१ खेलत फाग महामुनि
२ क्रमबद्धपरिणाम और कर्त्तापना
३ संपादकीय : क्रमबद्धपर्याय
४ मूढ़ और अमूढ़
[समयसार प्रवचन]
६ बंधोदयस्थान जीव के नहीं
[नियमसार प्रवचन]
७ द्रव्यसंग्रह प्रवचन
८ ज्ञान-गोष्ठी
९ समाचार दर्शन
१० अभिमत
११ प्रबंध संपादक की कलम से

पंच परमेष्ठी का फैसला

भाई ! पंच परमेष्ठी भगवान ही हमारे 'पंच' हैं। ज्ञायकस्वभाव और क्रमबद्धपर्याय का यह जो वस्तुस्वरूप कहा जा रहा है; उसीप्रकार अनादि से पंच परमेष्ठी भगवान कहते आये हैं और महाविदेह में विराजमान सीमंधरादि भगवंत इस समय भी यही उपदेश दे रहे हैं।

— पूज्य स्वामीजी

आत्मधर्म

शाश्वत सुख का, आत्म शान्ति का, प्रगट करे जो मर्म।
समयसार का सार, सभी को प्रिय, यह आतम धर्म॥

वर्ष : ३४ [४०५] अंक : ९

खेलत फाग महामुनि वन में, स्वातम रंग सदा सुखदाई।टेक॥
अष्टकर्म की रचत होलिका, ध्यान धनंजय ताहि जराई।
राग-द्वेष-मोहादिक कंटक, भस्म किये चिर शांति उपाई॥
खेलत फाग महामुनि० ॥१॥

मार्दव आर्जव सत्यादिक मिल, दया क्षमा संग होरी मचाई।
मन मृदंग तम्बूरा तन का, डुलन डोरि कसि तंग कराई॥
खेलत फाग महामुनि० ॥२॥

सुरत सारंगी की धुनि गाजै, मधुर वचन बाजत शहनाई।
ज्ञान गुलाल भाल पर सोहै, परम अहिंसा अबीर उड़ाई।
खेलत फाग महामुनि० ॥३॥

क्षमा रंग छिड़कत भविजन पर, प्रेम रंग पिचकारी चलाई।
मोक्षमहल के द्वार फाग लखि, सेवक 'कुंज' रहे हर्षाई॥
खेलत फाग महामुनि० ॥४॥

बीस वर्ष पहले

[इस स्तंभ में आज से बीस वर्ष पहले आत्मधर्म (हिंदी) मे प्रकाशित महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित किया जाता है।]

क्रमबद्धपरिणाम और कर्त्तापना

प्रश्नः-पर्यायें क्रमबद्ध हैं; आत्मा की पर्यायें भी क्रमबद्ध जो होने योग्य हैं, वही होती है; इसलिए आत्मा उनका अकर्त्ता है-(क्या) यह बात ठीक है ?

उत्तरः-नहीं; आत्मा अपनी पर्याय का अकर्ता है—यह बात ठीक नहीं है। आत्मा अपनी जिन-जिन क्रमबद्धपर्यायोंरूप से परिणमित होता है, उनका कर्त्ता वह स्वयं ही है; परंतु यहाँ इतना विशेष समझने योग्य है कि 'आत्मा का ज्ञायकस्वभाव है'—ऐसी जिसकी दृष्टि हुई है अथवा क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हुआ है, वह जीव मिथ्यात्वादि भावोंरूप से परिणमित होता ही नहीं। इसलिये मिथ्यात्वादि भावों का तो वह अकर्त्ता ही है तथा अल्परागादि विकार होता है, उसमें भी वह एकत्वरूप से परिणमित नहीं होता। उस अपेक्षा से वह रागादि का भी अकर्त्ता है; किंतु अपने सम्यग्दर्शन-ज्ञानादि निर्मल क्रमबद्धपरिणामों का तो वह कर्त्ता है। 'क्रमबद्धपरिणाम' का ऐसा अर्थ नहीं है कि आत्मा स्वयं कर्त्ता हुआ बिना ही वह परिणाम हो जाता है। ज्ञानी अपने निर्मल ज्ञानभाव करता हुआ स्वयं उसका कर्त्ता होता है और अज्ञानी अपने अज्ञानभाव को करता हुआ उसका कर्त्ता होता है। इसप्रकार प्रत्येक द्रव्य स्वयं ही अपने क्रमबद्धपरिणाम का कर्त्ता है।

— पूज्य स्वामीजी

— आत्मधर्म, वर्ष १५, अंक १७९, मार्च १९६०, पृष्ठ ५०२

सम्पादकीय

क्रमबद्धपर्याय | एक अनुशीलन

[गतांक से आगे]

अत्यंत स्पष्ट उक्त आगम प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियों से आहत कुछ लोग इन प्रबल प्रहारों से बचने के लिये नियमसार गाथा १५९ का सहारा लेते हैं, जो कि इसप्रकार है:—

जाणदि पस्सदि सव्वं ववहारणाएण केवली भगवं।
केवलणाणी जाणदि पस्सदि णियमेण अप्पाणं॥

व्यवहारनय से केवली भगवान सब जानते हैं और देखते हैं; निश्चयनय से केवलज्ञानी आत्मा को जानता है और देखता है।

परमात्मप्रकाश में भी इसप्रकार का कथन आता है:—

"ते पुणु वंदउँ सिद्धगण जे अप्पाणि वसंत।
लोयालोउ वि सयलु इहु अच्छहिं विमलु णियंत।[१]

मैं उन सिद्धों को वंदता हूँ—जो निश्चय करके अपने स्वरूप में तिष्ठते हैं; और व्यवहारनय करि लोकालोक को संशयरहित प्रत्यक्ष देखते हुए ठहर रहे हैं।"

उक्त कथनों के आधार पर वे लोग कहते हैं कि केवली भगवान पर को तो व्यवहार से जानते हैं, निश्चय से जो जानते नहीं; और व्यवहार असत्यार्थ है—जैसा कि समयसार गाथा ११ में कहा है:—

"ववहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।"

व्यवहार अभूतार्थ है और निश्चयनय भूतार्थ है।

इसप्रकार जब केवली भगवान पर को जानते ही नहीं हैं, तो फिर समस्त द्रव्यों की

१. परमात्मप्रकाश, अधिकार १, दोहा ५

भविष्य की पर्यायों को जानने की बात ही कहाँ रह जाती है ?

पर उनका यह कहना भी पूर्वापर-विचार रहित है। क्योंकि एक तो पर को नहीं जानने से पर के भविष्य को नहीं जानने की बात कहना तो कुछ समझ में आ भी सकती है, पर अपने भविष्य को भी नहीं जानते यह कैसे सिद्ध होगा ? अतः यह सिद्ध नहीं हो सकता कि वे भविष्य को नहीं जानते।

दूसरी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने उक्त कथनों के मर्म पर ध्यान ही नहीं दिया है। यदि उक्त कथनों को पूर्वापर अच्छी तरह देख लिया जाये तो सब कुछ-स्पष्ट हो जाता है।

उक्त संपूर्ण कथन 'स्वाश्रितोनिश्चयः, पराश्रितो व्यवहारः' स्वाश्रित कथन को निश्चय और पराश्रित कथन को व्यवहार कहते हैं—इन परिभाषाओं को ध्यान में रखकर किया गया है। जैसा कि नियमसार की उक्त गाथा की संस्कृत टीका में स्पष्ट उल्लेख है।

जिसमें 'स्व' की ही अपेक्षा हो, वह निश्चयकथन है और जिसमें 'पर' की अपेक्षा आवे, वह व्यवहारकथन होता है। अतः केवली भगवान अपनी आत्मा को देखते-जानते हैं—यह निश्चयकथन हुआ और वे पर को देखते-जानते हैं—यह व्यवहारकथन हुआ; उक्त कथन का तात्पर्य मात्र इतना है। वे पर को व्यवहार से जानते हैं—इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि वे पर को जानते ही नहीं हैं।

नियमसार की १५९ से १६९ तक की गाथाओं और उनकी संस्कृत टीका को यदि एक बार अच्छी तरह देख लें तो सब बात सहज स्पष्ट हो जाती है। उक्त संपूर्ण प्रकरण भगवान की सर्वज्ञता को सिद्ध करनेवाला ही है। विस्तार-भय से वह सब यहाँ देना संभव नहीं है। जिज्ञासु पाठकों से उक्त प्रकरण का गहराई से मंथन करने का सानुरोध आग्रह हैं।

आचार्य जयसेन प्रवचनसार गाथा ३९ की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में लिखते हैं:—

''यथायं केवली परकीयद्रव्यपर्यायान् यद्यपि परिच्छित्तिमात्रेण जानाति तथापि निश्चयनयेन सहजानन्दैकस्वभावे स्वशुद्धात्मनि तन्मयत्वेन परिच्छित्तिं करोति, तथा निर्मलविवेकजनोऽपि यद्यपि व्यवहारेण परकीयद्रव्यगुणपर्यायपरिज्ञानं करोति, तथापि निश्चयेन निर्विकारस्वसंवेदनपर्याये विषयत्वात्पर्यायेण परिज्ञानं करोतीति सूत्रतात्पर्यम्।

जिसप्रकार केवली भगवान परकीय द्रव्य-पर्यायों को यद्यपि परिच्छित्ति मात्ररूप से जानते हैं तथापि निश्चयनय से सहजानंदरूप एकस्वभावी शुद्धात्मा में ही तन्मय होकर परिच्छित्ति करते हैं; उसीप्रकार निर्मल विवेकीजन भी यद्यपि व्यवहार से परकीय द्रव्य-गुण-पर्यायों का ज्ञान करता है, परंतु निश्चय से निर्विकार स्वसंवेदन पर्याय में ही तद्विषयक पर्याय का ही ज्ञान करता है।''

उक्त कथन के अनुसार जिस अपेक्षा से केवली भगवान मात्र अपने को जानते हैं, पर को नहीं; उस अपेक्षा से अर्थात् निश्चयनय से तो सम्यग्दृष्टि भी मात्र अपने को ही जानता है, पर को नहीं। अतः यदि आप सर्वज्ञ का पर को जानना असत्य मानेंगे तो फिर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी का भी पर को जानना असत्य मानना होगा; जो कि प्रत्यक्षसिद्ध है। आशा है ज्ञानियों का पर को जानना आपको भी अस्वीकृत न होगा।

दूसरे केवली भगवान स्वयं को तन्मय होकर जानते हैं; परंतु पर को जानते तो हैं, पर उनमें वे तन्मय नहीं होते। इस कारण भी उनका पर को जानना व्यवहार कहा जाता है।

परमात्मप्रकाश अध्याय १, गाथा ५२ की टीका में इसकी चर्चा अत्यंत स्पष्ट है:—

''कश्चिदाह। यदि व्यवहारेण लोकालोकं जानाति तर्हि व्यवहारनयेन सर्वज्ञत्वं, न च निश्चयनयेनेति।

परिहारमाह—यथा स्वकीयमात्मानं तन्मयत्वेन जानाति तथा परद्रव्यं तन्मयत्वेन न जानाति, तेन कारणेन व्यवहारो भण्यते न च परिज्ञानाभावात्। यदि पुनर्निश्चयेन स्वद्रव्यवत्तन्मयो भूत्वा परद्रव्यं जानाति तर्हि परकीयसुखदुःखरागद्वेषपरिज्ञातो सुखी-दुःखी रागी-द्वेषी च स्यादिति महद्दूषणं प्राप्नोतीति।

प्रश्न—यदि केवली भगवान व्यवहारनय से लोकालोक को जानते हैं तो व्यवहारनय से ही उन्हें सर्वज्ञत्व भी होओ परंतु निश्चयनय से नहीं ?

उत्तर-जिसप्रकार तन्मय होकर स्वकीय आत्मा को जानते हैं, उसीप्रकार परद्रव्य को तन्मय होकर नहीं जानते, इस कारण व्यवहार कहा गया है, न कि उनके परिज्ञान का ही अभाव होने के कारण। यदि स्वद्रव्य की भाँति परद्रव्यको भी निश्चय से तन्मय होकर जानते तो परकीय सुख व दुःख को जानने से स्वयं सुखी-दुःखी और परकीय राग-द्वेष को जानने से

स्वयं रागी-द्वेषी हो गये होते और इसप्रकार महत् दूषण प्राप्त होता।''

तार्किकचक्रचूड़ामणि आचार्य समंतभद्र रत्नकरंडश्रावकाचार के मंगलाचरण में श्री वर्द्धमान भगवान के केवलज्ञान में अलोकाकाश सहित तीनों लोकों के समस्त पदार्थों के स्पष्ट झलकने की चर्चा इसप्रकार करते हैं—

''नमः श्री वर्द्धमानाय निर्धूत कलिलात्मने,
सालोकानां त्रिलोकानाम्, यद् विद्यादर्पणायते।

जिनके केवलज्ञानरूपी दर्पण में अलोकाकाश सहित तीनों लोक झलकते हैं और जिन्होंने ज्ञानावरणादि पापरूपी मैल को धो डाला है, उन वर्द्धमान भगवान को नमस्कार हो।''

इसप्रकार जैन-दर्शन के सर्वमान्य दिग्गज आचार्य श्री कुंदकुंद, कार्तिकेय, समंतभद्र, उमास्वामी, पूज्यपाद, वीरसेन, अमृतचंद्र, रविषेण आदि अनेक आचार्यों के प्रबल प्रमाणों से सर्वज्ञता और त्रिकालज्ञता सहज सिद्धि है।

उपर्युक्त अनेक प्रमाण देने के बाद भी लोगों को आग्रह रहता है कि आप हमें स्पष्टरूप से बताइये कि क्रमबद्धपर्याय की बात कौन से शास्त्र हैं? पर मेरा कहना है कि ऐसा कौन सा शास्त्र है जिसमें क्रमबद्धपर्याय की बात नहीं है? चारों ही अनुयोगों के शास्त्रों में यहाँ तक कि पूजनपाठ में भी कदम-कदम पर क्रमबद्धपर्याय का स्वर मुखरित होता सुनाई देता है।

''भामंडल की द्युति जगमगात, भवि देखत निजभव सात-सात''[१]

तीर्थंकर भगवान के प्रभामंडल में भव्यजीव को अपने-अपने सात-सात भव दिखायी देते हैं। उन सात भवों में तीन भूतकाल के, तीन भविष्य के एवं एक वर्तमान भव दिखायी देता है। इसके अनुसार प्रत्येक भव्य के कम से कम भविष्य के तीन भव तो निश्चित रहते ही हैं, अन्यथा वे दिखायी कैसे देते? तीन भव की आयु एक साथ बंध नहीं सकती। अतः यह भी नहीं कहा जा सकता कि आयुकर्म बंध जाने से भव निश्चित हो गये थे। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वे पहले से ही निश्चित रहते हैं, होते नहीं।

प्रथमानुयोग के सभी शास्त्र भविष्य की निश्चित घोषणाओं से भरे पड़े हैं।

---

१. कविवर वृंदावनकृत चंद्रप्रभ पूजन, जयमाल

भगवान नेमिनाथ ने द्वारका जलने की घोषणा बारह वर्ष पूर्व कर दी थी। साथ ही यह भी स्पष्ट कर दिया था कि किस निमित्त से, कैसे और कब, यह सब-कुछ घटित होगा। अनेक उपायों के बाद भी वह सब-कुछ उसी रूप में घटित हुआ।

हाँ, एक बात अवश्य है कि सुननेवाले लोगों में उक्त बात की प्रतिक्रिया अपने-अपने भवितव्यानुसार भिन्न-भिन्न हुई। जिनका भविष्य अच्छा था, उन्हें उक्त बात सुनकर वैराग्य हो गया। बहुतों ने नग्न दिगंबर दीक्षा धारण कर ली, अनेकों ने अणुव्रत धारण किये, अनेक सम्यक्त्वी बने; पर जिनकी अधोगति होनी थी, उन्हें भगवान की बात को टालने का विकल्प आया। वे इस प्रयत्न में जुट गये कि देखें द्वारका कैसे जलती है ? उन्होंने अपना सारा पुरुषार्थ मानो भगवान की बात को झूठा सिद्ध करने में ही लगा दिया। पर भगवान ने तो जैसा देखा-जाना था, कह दिया था; वे उसके कर्त्ता-धर्त्ता तो थे नहीं।

भगवान की वाणी में तो द्वारका जलने के उपादान के साथ-साथ निमित्तों का भी स्पष्ट उल्लेख था, पर निमित्ताधीन दृष्टिवालों का ध्यान उपादान की ओर तो गया ही नहीं, वे तो निमित्तों को हटाने में लग गये और अपनी दृष्टि में निमित्तों को हटाकर अपने को सुरक्षित भी समझने लगे पर.....।

निमित्ताधीन दृष्टिवालों को भगवान की सर्वज्ञता पर पूरा भरोसा नहीं होता, उनकी दृष्टि चंचल बनी रहती है। यह बात नहीं कि उन्हें भगवान की बात पर विश्वास ही न था, यदि विश्वास नहीं होता तो फिर वे डरते क्यों, घबराते क्यों ? उसे टालने का असफल प्रयास ही क्यों करते ? उन्हें विश्वास तो था, पर पक्का विश्वास नहीं था; भरोसा था, पर पूरा भरोसा नहीं था। यों ही ढुल-मुल श्रद्धा थी। जिनकी होनहार खोटी होती है, उनकी श्रद्धा सर्वज्ञ पर भी नहीं टिकती। जिनका संसार अल्प रह जाता है, उन्हीं ही सर्वज्ञता समझ में आती है।

भगवान आदिनाथ ने मारीचि के बारे में एक कोड़ा-कोड़ी सागर तक कब क्या घटित होनेवाला है—सब-कुछ बता ही दिया था। क्या आप उसकी सत्यता में शंकित हैं ? क्या वह सब-कुछ पहले से निश्चित नहीं था ? असंख्य भव पहले यह बता दिया गया था कि वे चौबीसवें तीर्थंकर होंगे। तब तो उनके तीर्थंकर प्रकृति का बंध भी नहीं हुआ था। क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति बंध जाने के बाद असंख्य भव नहीं हो सकते। तीर्थंकर प्रकृति को बाँधनेवाला

तो उसी भव में, या तीसरे या चौथे भव में अवश्य मुक्ति को प्राप्त कर लेता है। अत: यह भी नहीं कहा जा सकता कि कर्म बँध जाने से उनका उतना भविष्य निश्चित हो गया था। यह सब तो यही सिद्ध करता है कि आदिनाथ के समय से ही वह निश्चित था कि वे चौबीसवें तीर्थंकर होंगे। जब चौबीसवें तीर्थंकर होने का निश्चित था तो फिर बीच के भव भी निश्चित ही थे। निश्चित थे—तभी तो जाने जा सके, और बताये भी जा सके।

तिलोयपण्णत्ति, अधिकार ४, श्लोक १००२ से १०१६ तक में अष्टांग निमित्तज्ञान द्वारा भविष्य जाने जाने का स्पष्ट उल्लेख है। आचार्य भद्रबाहु ने निमित्तज्ञान के आधार पर उत्तर भारत में बारह वर्ष के अकाल की घोषणा की थी, जो पूर्णत: सत्य उतरी। सम्राट चंद्रगुप्त को स्वप्न आये थे, जिनके आधार पर भी भविष्य की घोषणाएँ की गयी थीं।

तथा क्या करणानुयोग में यह नहीं लिखा है कि छह महीने आठ समय में छह सौ आठ जीव निगोद से निकलेंगे और इतने ही समय में इतने ही जीव मोक्ष भी जावेंगे। क्या इससे अधिक जीव निगोद से निकल सकते हैं या मोक्ष जा सकते हैं ? क्या यह निश्चित नहीं है ? है, तो फिर क्या इससे वस्तु की स्वतंत्रता खंडित नहीं होती ? इतने ही जीव मोक्ष क्यों जावेंगे, इससे अधिक क्यों नहीं ?

करणानुयोग में चतुर्गति के जीवों की निश्चित संख्या लिखी हुई है और वह कभी कम-बढ़ भी नहीं होती। यदि सब-कुछ निश्चित नहीं है तो फिर जीवों के पाप-पुण्यानुसार नारकियों और देवों की संख्या न्यूनाधिक होती रहनी चाहिये।

करणानुयोग में यह भी लिखा है कि जीव नित्यनिगोद से दो हजार सागर के लिये निकलता है—उसमें भी दो इंद्रिय के इतने, तीन इंद्रिय के इतने, चार इंद्रिय के इतने भव धारण करता है, मनुष्य के ४८ भव मिलते हैं। यह सब क्या है ?

क्या इससे यह निष्कर्ष नहीं निकलता कि चारों गतियों के जीवों की संख्या निश्चित है और प्रत्येक जीव के भव भी निश्चित हैं तथा उनका क्रम भी निश्चित है, अन्यथा सारी व्यवस्था कैसे बनेगी ? कहीं तो अधिक भीड़ इकट्ठी हो जावेगी और कहीं स्थान खाली पड़े रहेंगे। पर ऐसा नहीं होता।

इस पर लोगों को लगता है कि धर्म तो दूर, क्या पुण्य-पाप करना भी हमारे हाथ में नहीं है ? हम तो एकदम बँध गये।

शुभ और अशुभ भाव तो क्रमशः बदलते ही रहते हैं। क्योंकि दोनों में से किसी का भी काल अंतर्मुहूर्त से अधिक नहीं है, अतः प्रत्येक अंतर्मुहूर्त में परिवर्तन अवश्यंभावी है। अनंत प्रयत्न करने पर भी आप अंतर्मुहूर्त से अधिक शुभभाव में नहीं ठहर सकते, यदि शुद्ध में नहीं गये तो फिर अशुभ में आना अनिवार्य है। यह परिवर्तन निगोद में भी हुआ करता है, वहाँ भी शुभभाव होते हैं; अन्यथा वहाँ से जीव निकले ही कैसे ? सैनी पंचेन्द्रिय होने का पुण्य एकेन्द्रिय से लेकर असैनी पंचेन्द्रिय तक के जीव असंज्ञी दशा में ही बाँधते हैं।

भरत चक्रवर्ती के उन पुत्रों ने, जो कि निगोद से निकलकर एकाधपर्याय को अविवक्षित करके सीधे चक्रवर्ती के पुत्र होकर उसी भव से मोक्ष गये हैं; मनुष्य भव और चक्रवर्ती के यहाँ उत्पन्न होकर चरम शरीर प्राप्त करने का पुण्य असैनी अवस्था में ही बाँधा था। पर यह सब सहज क्रम से संपन्न हुआ था, संभव हुआ था; वहाँ बुद्धिपूर्वक कुछ भी प्रयत्न नहीं किया गया था।

जैसा कि कहा है—

नित्य निगोद माँहि तैं कढ़िकर, नर परजाय पाय सुखदानी।
समकित लहि अंतर्मुहूर्त में, केवल पाय वरी शिव रानी॥[१]

फिर भी मैं आपसे ही जानना चाहता हूँ कि आप कौन सा पुण्यभाव करने की स्वाधीनता चाहते हैं—तीर्थंकर, चक्रवर्ती या इंद्रादिपद प्राप्त करने का ? जब तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं और वह भी एक क्षेत्र में एक साथ दो नहीं, तो क्या दो जीव एक साथ तीर्थंकर होने योग्य पुण्य-बंध कर सकते हैं ? यह बात एक क्षेत्र की अपेक्षा कही गयी है। यदि आप कहें ढाई द्वीप में तो एक साथ १७० तीर्थंकर हो सकते हैं, तो भी मुझे कोई परेशानी नहीं। क्योंकि १७० ही क्यों २०० क्यों नहीं ? २०० जीव एक साथ ऐसा पुण्य क्यों नहीं बाँध सकते ?

भरत में जो आगामी चौबीस तीर्थंकर होनेवाले हैं, उनके नामों की घोषणायें जिनागम में हो ही चुकी है। साथ ही उन जीवों के नाम भी घोषित हो चुके हैं, जिन्हें भावी तीर्थंकर होना है। वह सब निश्चित था तभी तो घोषित हुआ है। क्या उनके अतिरिक्त कोई जीव तीर्थंकर

१. कविवर भागचंदजी कृत आध्यात्मिक पद

प्रकृति बाँध सकता है ? यदि नहीं, तो फिर हम सब की तो १९ कोड़ा-कोड़ी सागर को छुट्टी हो गयी। और आप जानते हैं यह जीव निगोद से निकलकर त्रसपर्याय में दो हजार सागर को ही आता है। यदि इस बीच मुक्त नहीं हुआ वो फिर वहीं निगोद में चला जाना है। फिर अनंतकाल तक कोई ठिकाना नहीं।

यदि आप कहें—''न सही भरत के; ऐरावत के या विदेह के तीर्थंकर हो जावेंगे।'' पर भाई साहब ! जब भरत के तीर्थंकरों की घोषणा हो गयी, तो विदेह के तीर्थंकरों की भी हो ही गयी होगी ? यहाँ के शास्त्रों में यहाँ का उल्लेख है, वहाँ के शास्त्रों में वहाँ का उल्लेख होगा ? भाई ! केवली के ज्ञान में तो अनंत काल तक के होनेवाले तीर्थंकरों की घोषणा हो गयी है, कोई गुंजाइश नहीं है, हिलने-डुलने की।

यदि कोई कहे—न सही तीर्थंकर का पुण्य, चक्रवर्ती ही हो जावेंगे। पर चक्रवर्ती की सीटें तो और भी कम हैं। एक क्षेत्र में जितने काल में तीर्थंकर चौबीस होते हैं, उतने ही काल में चक्रवर्ती तो बारह ही होते हैं। जब तीर्थंकरों की निश्चित हैं, तो चक्रवर्तियों का भी निश्चित होगा। शास्त्रों में तो उल्लेख इसलिये नहीं मिलता कि किस-किस का उल्लेख करें। तीर्थंकरों का उल्लेख करके सामान्यत: यह बता दिया कि सब-कुछ निश्चित है। यही जानना जरूरी भी है। यह जानना कोई जरूरी नहीं कि किसका क्या होगा ? यदि सबका भविष्य बतावें तो याद भी किस-किस का रहेगा। हर एक को दूसरे का भविष्य जानने में रुचि भी क्या है ? सब अपना-अपना ही जानना चाहते हैं।

न सही तीर्थंकर और चक्रवर्ती, पुण्य करके स्वर्ग ही चले जावेंगे। पर वहाँ भी तो सीट खाली हो, तब जाओगे न ? वहाँ अकाल-मृत्यु तो होती नहीं। यदि कोई देव या इंद्र अभी-अभी स्वर्ग में गया है, तो फिर जब तक उसकी आयु पूरी न हो जावे तब तक उस पद के योग्य पुण्य कोई अन्य जीव नहीं बाँध सकता, और उनकी आयु भी तो सागरों की होती है। स्वर्गों की तो क्या बात, बिना सीट खाली हुए तो नरक में भी जगह नहीं मिलनेवाली है। आपका जब का रिजर्वेशन होगा तभी सर्वत्र स्थान मिलेगा।

जिनवाणी के उल्लेखानुसार तो बात ऐसी ही है। यह बात अलग है कि आप जिनवाणी को ही न मानें। पर उससे भी निस्तारा नहीं मिलेगा। क्योंकि फिर तो आपको बहुत-कुछ मानना छोड़ना होगा। फिर न आप आदिनाथ को मान सकेंगे, न महावीर को। चौबीस तीर्थंकर और

बारह चक्रवर्ती भी मानना संभव न होगा। क्योंकि यह सब आपने आगम में पढ़कर ही तो माना है ? जब आगम ही सत्य न रहा तो फिर सब-कुछ साफ है। आपने कल्पना भी की है कि आपने आगम के आधार पर क्या-क्या मान रखा है ? जरा विचार करके देखिये तो पता चलेगा कि फिर स्वर्ग-नरक सब गायब। वह ही रह जावेगा जो कुछ सामने दिखाई दे रहा है।

मुझे विश्वास है इतने आगे आने के लिये आप भी तैयार न होंगे। यदि मेरी बात में, कुछ दम नजर आता है तो फिर एक बार गंभीरता से विचार कीजिये।

जब अपने को प्रथमानुयोग या करणानुयोग का विशेषज्ञ कहनेवाले विद्वान भी संपूर्ण पर्यायों के क्रमनियमित होने का विरोध करते हैं तब आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता, क्योंकि प्रथमानुयोग और करणानुयोग में तो कदम-कदम पर इसका प्रबल समर्थन किया गया है।

[क्रमशः]

मई/जून १९७९ में होनेवाले शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर के लिये महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश तथा राजस्थान से आमंत्रण पत्र प्राप्त हुए हैं, जिन पर निर्णय लेकर अगले अंक में शिविर की निश्चित तिथि व स्थान की घोषणा की जावेगी। हमारे पास इस संबंध में अनंक बंधुओं के पत्र आ रहे हैं, जिनका व्यक्तिगत उत्तर देना संभव नहीं है, अतः वे आत्मधर्म का अगला अंक देखने का कष्ट करें। विशेष जानकारी के लिये उसके बाद संपर्क स्थापित करें।

—मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट

बड़ौत :- पूज्य आचार्य श्री जयसागरजी महाराज ने अपने प्रवचनों में कहा कि वीतराग-विज्ञान पाठशालाएँ घर-घर में खुलना चाहिये। उन्हें हमारा आशीर्वाद है। आत्मशांति का मार्ग बतानेवाला आत्मधर्म भी घर-घर में पहुँचना चाहिये। — *पंडित शिखरचंद जैन, बड़ौत*

मूढ़ और अमूढ़

परमपूज्य आचार्य कुंदकुंद के सर्वोत्तम ग्रंथराज समयसार की बीसवीं, इक्कीसवीं एवं बाईसवीं गाथा एवं उनमें समागत बाईसवें कलश पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों की संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथाएँ इसप्रकार हैं :—

अहमेदं एदमहं अहमेदस्सम्हि अत्थि मम एदं
अण्णं जं परदव्वं सच्चित्ताचित्तमिस्सं वा॥२०॥
आसि मम पुव्वमेदं एदस्स अहं पि आसि पुव्वं हि।
होहिदि पुणो ममेदं एदस्स अहं पि होस्सामि॥२१॥
एयं तु असब्भूदं आदवियप्पं करेदि सम्मूढ़ो।
भूदत्थं जाणंतो ण करेदि दु तं असंमूढ़ो॥२२॥

जो पुरुष अपने से अन्य सचित्त, अचित्त और मिश्र परद्रव्यों में 'मैं यह हूँ, यह मुझे स्वस्वरूप है; मैं इसका हूँ, यह मेरा है; यह मेरा पहले था, मैं भी इसका पहले था; यह मेरा भविष्य में होगा, मैं भी इसका भविष्य में होऊँगा'—ऐसा झूठा आत्म-विकल्प करता है, वह मूढ़ है; और जो पुरुष भूतार्थ को जानता हुआ वैसा विकल्प नहीं करता, वह मूढ़ नहीं, किंतु ज्ञानी है।

शिष्य प्रश्न करता है कि अप्रतिबुद्ध का लक्षण क्या है? १९वीं गाथा में शिष्य ने पूछा था कि यह जीव कब तक अप्रतिबुद्ध रहता है? अब वह पूछता है कि अज्ञानी को कैसे पहिचाना जा सकता है? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यदेव समझाते हैं:—

जैसे कोई पुरुष अग्नि और लकड़ी को एकरूप मानकर 'जो अग्नि है सो ईंधन है, और ईंधन है सो अग्नि है; अग्नि का ईंधन है, ईंधन की अग्नि है; अग्नि का ईंधन पहले था, ईंधन की अग्नि पहले थी; अग्नि का ईंधन भविष्य में होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में होगी'—ऐसे झूठे विकल्प करता है, वह अज्ञानी है। ऐसा विकल्प करनेवाले को अग्नि और लकड़ी के त्रिकाल भिन्नस्वभाव की प्रतीति नहीं है; अग्नि का स्वभाव उष्णत्व है, लकड़ी का स्वभाव उष्णत्व नहीं है—ऐसी स्पष्ट भिन्नता अज्ञानी को भासित नहीं होती।

यहाँ आत्मा को अग्नि की और परद्रव्य को ईंधन की उपमा देते हुए समझाया है कि जो आत्मा स्त्री-पुत्रादि सचित्त पदार्थों में, धन-धान्यादि अचित्त पदार्थों में, अथवा ग्राम-नगरादि मिश्र पदार्थों में 'मैं यह परद्रव्य हूँ, यह परद्रव्य मुझ स्वरूप है; यह परद्रव्य मेरा है, मैं इस परद्रव्य का हूँ; मेरा यह पहले था, इसका मैं पहले था; मेरा यह भविष्य में होगा, इसका मैं भविष्य में होऊँगा'—इसप्रकार झूठे आत्मविकल्प करता है, वह आत्मा अज्ञानी है। ऐसे असत्यार्थ विकल्पों से ही अज्ञानी की पहिचान होती है।

यहाँ 'मैं परद्रव्य हूँ और परद्रव्य मुझस्वरूप है'—ऐसा कहकर सामान्य बात कही है और फिर 'यह मेरा है, मैं इसका हूँ; यह मेरा पहले था, मैं इसका पहले था; यह मेरा भविष्य में होगा, मैं इसका भविष्य में होऊँगा'—ऐसा कहकर वर्तमान, भूत और भविष्य तीनों काल की बात कही है। जिसे वर्तमान में परपदार्थों से एकता बुद्धि है, उसे त्रिकालवर्ती सभी पदार्थों से एकत्वबुद्धि है।

जैसे कोई मूर्ख मनुष्य अपने मूर्खतापूर्ण लक्षणों से पहचाना जाता है; उसीप्रकार परद्रव्यों में एकत्वबुद्धिरूप लक्षण से अज्ञानी पहचाना जाता है। अज्ञानी स्त्री-पुत्र-कुटुंबादि में एवं शुभाशुभ राग में अयथार्थ आत्मविकल्प करता है कि 'यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी पुत्रवधू है, स्त्री-पुत्रादि मेरे कारण पलते हैं, मैं इनका स्वामी हूँ, मैं उन्हें जिसप्रकार रखना चाहता हूँ, ये उसीप्रकार रहते हैं, मैं धन-धान्यादि को संभालकर रखता हूँ'—इत्यादि अनेक प्रकार के झूठे विकल्प अज्ञानी करता है।

अज्ञानी, स्त्री को अर्धांगिनी या घरवाली कहता है। परंतु भाई! तेरा और स्त्री का शरीर भी भिन्न-भिन्न है और आत्मा भी भिन्न-भिन्न है, ऐसी भिन्नता का विचार तो कर! 'स्त्री-पुत्रादि मेरे थे, मैं इनका था; भविष्य में ये मेरे होंगे, मेरी सेवा करेंगे'—ऐसे विकल्प झूठे हैं। जो ऐसे विकल्प करता है, वह अधर्मी है, अज्ञानी है। जो परवस्तुओं को अपने आधार पर अवलंबित मानता है और अपने को परद्रव्यों पर अवलंबित मानता है, उसे अपने त्रिकाल स्वतंत्र चैतन्यस्वभाव की प्रतीति नहीं है।

भाई! शरीर-स्त्री-पुत्रादि तो तेरे हैं नहीं; परंतु हिंसा-झूठ-चोरी आदि के अशुभ परिणाम तथा भक्ति-दया-दानादि के शुभ परिणाम भी तेरे नहीं हैं; पहले भी नहीं थे और भविष्य में भी नहीं होंगे। रागादि को भूत, भविष्य या वर्तमान में अपना मानना अज्ञानी का लक्षण है।

सचेतन शरीर तो जीव का नहीं; परंतु गुणस्थान-मार्गणास्थान आदि मिश्र परद्रव्य भी जीव का स्वभाव नहीं है। मार्गणादिरूप जीव के भाव और उनमें निमित्तरूप कर्म संयोग की अपेक्षा से जयसेनाचार्यदेव ने अपनी टीका में गुणस्थान-मार्गणास्थानादि को मिश्र परद्रव्य कहा है।

रसना इंद्रिय के लोलुपी कुछ अज्ञानी कहते हैं कि 'भूखे भजन न होय गोपाला' और ऐसा मानते हैं कि पेट में रोटियाँ पड़ने से आत्मा का गुण प्रकट हो जाता है। इसका अर्थ यह है कि रोटियों से आत्मा का गुण प्रकट होता है। यदि ऐसा हो तो आत्मा जड़ हो जाए, परंतु ऐसा नहीं होता। कुछ लोग शरीर को धर्म का साधन मानते हैं और कहते हैं कि प्रातः घूमने जायेंगे तो शरीर अच्छा रहेगा, शरीर अच्छा रहने से आत्मा में स्फूर्ति रहेगी और इससे धर्म होगा। परंतु शरीर धर्म का सच्चा साधन नहीं है। शरीर के रजकणों में परिवर्तन होने से आत्मा को कोई लाभ या हानि नहीं होती। जिसने शरीर को अपना माना है, वह शरीर की समस्त क्रियाओं को अपनी मानता है।

''मैं अखंड आनंदस्वभावी परपदार्थों से त्रिकाल भिन्न ज्ञानस्वरूपी हूँ, पर के कारण मेरी कोई अवस्था नहीं होती''—ऐसी श्रद्धा आत्मव्यवहार है तथा ''मैं मनुष्य हूँ और शरीरादि की क्रिया मेरी है'' ऐसा कहना मनुष्यव्यवहार है। अज्ञानी अपनी और पर की सत्ता को एक मान लेता है। जो अपनी सत्ता में पर की सत्ता का प्रवेश मान लेता है वह अधर्मी और अज्ञानी है। अज्ञानी मानता है कि ''यह मेरे संबंधी हैं, पर मेरे संबंधी थे, तथा भविष्य में यह मेरे संबंधी होंगे''—किंतु वास्तव में कोई किसी का कभी नहीं होता।

अज्ञानी पूछता है कि हम जो अपनी आँखों से देखते हैं वह झूठ है क्या? उसे ज्ञानी समझाते हैं कि भाई! तुम्हारी दृष्टि ही मिथ्या है। लोग तो अपनी आँखों से अपना विपरीत अभिप्राय ही देखते हैं। बीमार होने पर दवाई खाने से बुखार उतर जाता है—ऐसा अज्ञानी को दिखता है। पर यदि दवाई खाने से बुखार उतरता हो तो सभी का बुखार उतर जाना चाहिये, परंतु अज्ञानी ऐसा विचार नहीं करता। साता का उदय होने पर बुखार उतरता है—तब निमित्त की अपेक्षा कथन किया जाता है कि दवा से बुखार उतरा; परंतु ऐसा अज्ञानी की समझ में नहीं आता।

अज्ञानी का लक्षण बताने के बाद अब आचार्यदेव ज्ञानी का लक्षण बताते हैं। जिसे परद्रव्य में अपनेपन की मान्यता नहीं है, परंतु मात्र अपने आत्मा में ही आत्मत्व की बुद्धि है तथा स्व-पर को भिन्न-भिन्न जानकर आत्मा को ही अपनेरूप से अनुभव करता है, वह ज्ञानी है।

जैसे ''अग्नि है, वह ईंधन नहीं है, ईंधन है वह अग्नि नहीं है; अग्नि है वह अग्नि ही है, ईंधन है वह ईंधन ही है; अग्नि का ईंधन नहीं, ईंधन की अग्नि नहीं; अग्नि की अग्नि है, ईंधन का ईंधन है; अग्नि का ईंधन पहले नहीं था, ईंधन की अग्नि पहले नहीं थी; अग्नि की अग्नि पहले थी, ईंधन का ईंधन पहले था; अग्नि का ईंधन भविष्य में नहीं होगा, ईंधन की अग्नि भविष्य में नहीं होगी; अग्नि की अग्नि ही भविष्य में होगी, ईंधन का ईंधन ही भविष्य में होगा''—इसप्रकार अग्नि में ही अग्नि का सत्यार्थ विकल्प प्रतिबुद्ध का लक्षण है। इसीप्रकार ''मैं यह परद्रव्य नहीं हूँ, यह परद्रव्य मुझस्वरूप नहीं है; मैं तो मैं ही हूँ, परद्रव्य है वह परद्रव्य ही है; मेरा यह परद्रव्य नहीं, इस परद्रव्य का मैं नहीं; मेरा ही मैं हूँ, परद्रव्य का परद्रव्य है; यह परद्रव्य मेरा पहले नहीं था; यह परद्रव्य का मैं पहले नहीं था; मेरा मैं ही पहले था, परद्रव्य का परद्रव्य पहले था; यह परद्रव्य मेरा भविष्य में नहीं होगा, इसका मैं भविष्य में नहीं होऊँगा; मैं अपना ही भविष्य में होऊँगा, इस परद्रव्य का यह परद्रव्य भविष्य में होगा''—इसप्रकार जो स्वद्रव्य में ही सत्यार्थ आत्मविकल्प होता है, वही प्रतिबुद्ध का लक्षण है; इससे ज्ञानी पहिचाना जाता है।

देखो! ज्ञानी के लक्षण का उदाहरण देते समय अस्ति-नास्ति दोनों अपेक्षाओं से कथन किया है। अज्ञानी का लक्षण बताते समय तो मात्र अस्ति की ही बात की थी, क्योंकि वह पर में भी आत्मबुद्धि ही करता है। ज्ञानी को तो स्व-पर का भेद-विज्ञान है कि मैं ज्ञान-स्वरूपी आत्मा ही हूँ, शरीरादि परद्रव्यस्वरूप नहीं हूँ। इसलिये ज्ञानी का उदाहरण देते समय अस्ति-नास्ति दोनों का कथन किया है।

धर्मी जीव जानते हैं कि ''मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञानद्रव्य ही मेरा स्वद्रव्य है, ज्ञायकस्वभाव के अतिरिक्त अन्य जीवरूप मैं नहीं हूँ। गुरु-शिष्य आदि परजीवरूप तो मैं नहीं हूँ, परंतु शरीर-वस्त्र-धनादि अचेतन परद्रव्यरूप भी मैं नहीं हूँ। ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा तो राग भी अचेतन है, परद्रव्य है। ज्ञायकस्वभाव की अपेक्षा रागभाव की महिमा होना मिथ्यात्व है।'' इसलिये धर्मी जीव आत्मा को राग से अधिक अर्थात् भिन्न जानकर आत्मा की ही महिमा करते हैं।

ज्ञानी को हिंसादि अशुभ भाव तो दुःखरूप लगते ही हैं, परंतु दया-दान-व्रतादि के विकल्पों में भी ऐसा लगता है कि ''यह विभाव भाव हमारा देश नहीं है, इस परदेश में हम कहाँ आ पहुँचे? हमें यहाँ अच्छा नहीं लगता, यहाँ हमारा कोई नहीं है। जहाँ ज्ञान, श्रद्धा,

चारित्र, आनंद, वीर्यादि अनंतगुणरूप हमारा परिवार बसता है, वह हमारा स्वदेश है। अब हम अपने स्वरूप स्वदेश की ओर जा रहे हैं। हमें शीघ्र अपने वतन में जाकर आराम से बसना है, जहाँ सब हमारे हैं।''

देखो! धर्मी की दृष्टि ऐसी होती है। अज्ञानी को अपने श्रद्धा-ज्ञान आनंद आदि मूल स्वदेश की तो खबर ही नहीं है, वह तो ''मेरा पुत्र, मेरी घरवाली'' ऐसी असत्यार्थ दृष्टि में भूला है। ५० वर्ष की उम्र में भी स्त्री मर जाये तो दूसरी शादी करता है और मानता है कि भविष्य में स्त्री मेरी मदद करेगी; परंतु भाई स्त्री तो परद्रव्य है, उसमें एकता का विकल्प अज्ञान है, असत्यार्थ है, झूठा है, अज्ञानी का लक्षण है।

ज्ञानी तो अपने को परद्रव्य से भिन्न मानते हैं। ''परद्रव्य पहले मेरा नहीं था, वर्तमान में भी मेरा नहीं है, भविष्य में भी मेरा नहीं होगा। स्त्री-पुत्रादि तो मेरे नहीं हैं, परंतु दया-दानादि के विकल्प भी पहले मेरे नहीं थे, अभी मेरे नहीं हैं, और भविष्य में मेरे नहीं होंगे। मैं भी परद्रव्य का पहले नहीं था, अभी नहीं हूँ, और भविष्य में नहीं होऊँगा; मैं तो ज्ञानानंद स्वरूप ही हूँ''—इसप्रकार स्वद्रव्य में आत्मविकल्प अर्थात् आत्मबुद्धि सम्यग्ज्ञान है, सत्यार्थ है, ज्ञानी का लक्षण है।

गृहस्थ अवस्था में रहते हुए भी धर्मी अपने को स्त्री-पुत्रादि से भिन्न ज्ञानस्वरूप ही अनुभव करते हैं। ज्ञानी चक्रवर्ती हो, छह खंड की विभूति और ९६ हजार रानियों के संयोग में रहता हो—परंतु अपने को इन सबसे भिन्न ही अनुभव करता है। इंद्र भी सम्यग्दृष्टि होते हैं—वे भी ऐसा मानते हैं कि ''इंद्राणी और इंद्रपद मेरे नहीं हैं, यह तो परपद हैं, मैं भी इंद्राणी और इंद्रपद का नहीं हूँ।'' ज्ञानी परद्रव्यों को तो अपना मानते ही नहीं, अपितु स्वद्रव्य में ही आत्मबुद्धि होने से वे रागादि को भी अपना नहीं मानते। ''मैं परद्रव्यों से नहीं अपितु अपने ज्ञातृत्व लक्षण से पहिचाना जाता हूँ, परद्रव्य भी अपने-अपने स्वलक्षणों से पहिचाने जाते हैं''—इसप्रकार अपने स्वलक्षणों से आत्मा को ही अपना मानना ज्ञानी का लक्षण है। धर्मी जानते हैं कि ''मैं तो ज्ञायक ही हूँ, ज्ञायक ही था, और ज्ञायक ही रहूँगा, ज्ञायकत्व से छूटकर मैं कभी रागरूप नहीं हुआ, न कभी होऊँगा।'' इसलिये ज्ञानी को भव की शंका नहीं होती।

इसप्रकार, जो परद्रव्य में आत्मा का विकल्प करता है, वह अज्ञानी है और जो अपने आत्मा को ही अपना मानता है, वह ज्ञानी है—ऐसा अग्नि-ईंधन के दृष्टांत से दृढ़ किया है।

अब इस अर्थ का कलशरूप काव्य कहते हैं:—

त्यजतु जगदिदानीं मोहमाजन्मलीनं
रसयतु रसिकानां रोचनं ज्ञानमुद्यत्।
इह कथमपि नात्मानात्मना साकमेकः
किल कलयति काले क्वापि तादात्म्यवृत्तिम् ॥२२॥

जगत अर्थात् जगत के जीवो! अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये गये मोह को अब तो छोड़ो और रसिकजनों को रुचिकर और उदय होते हुए ज्ञान का आस्वादन करो। क्योंकि यह आत्मा वास्तव में किसी भी प्रकार अनात्मा के साथ तादात्म्यवृत्ति को प्राप्त नहीं होता—क्योंकि आत्मा एक है, वह अन्य द्रव्य के साथ एकरूप नहीं होता।

आचार्यदेव करुणापूर्वक समझाते हैं कि हे जगत के जीवो! अनादि संसार से लेकर आज तक अनुभव किये हुए मोह को अब तो छोड़ो। हे जीवो! चैतन्यस्वभावी होकर भी तुमने अनादि से पर में सावधान होकर कर्मचेतना और कर्मफलचेतना का ही अनुभव किया है। ऐसा दुःखरूप अनुभव करते-करते अनंतकाल बीत गया—अब तो इस मोह का अनुभव छोड़कर भगवान आत्मा का अनुभव करो।

आत्मा चैतन्य और आनंदस्वभावी है। ज्ञानी जीव इस चैतन्यस्वभावी आत्मा के अनुभव के ही रसिक हैं, जगत के विषय-कषाय तो उन्हें अरुचिकर लगते हैं। परंतु अज्ञानी तो अनादि से परपदार्थों और राग का रसिक हो रहा है, जो कि दुःखदायक हैं। इसलिये आचार्यदेव अत्यंत करुणापूर्वक समझाते हुए प्रेरणा करते हैं कि यह दुःखदायक रस छोड़कर अब तो स्वाभाविक चैतन्यरस के रसिक बनकर उसी रस का आस्वादन करो।

हे जीवो! अनादि से जिसप्रकार राग का, मोह का अनुभव किया; अब उसीप्रकार ज्ञानानंदस्वभाव का अनुभव करो। राग का रस छोड़कर ज्ञानानंदस्वभाव का रस ग्रहण करो।

कितने ही अज्ञानी जीव तो चाय, पान, बीड़ी, सिनेमा आदि के रसिक हैं। कुछ लोगों को खाँसी चलने लगती है, केंसर हो जाता है, फिर भी ऐसे व्यसन नहीं छोड़ते। उन्हें आचार्यदेव समझाते हैं कि भाई! ज्ञान के विलासी बनो, ज्ञान के शौकीन बनो। प्रकट उदयमान विकसित हो रहे ज्ञान का ही आस्वादन करो।

शुभाशुभ राग तो अजीव है। जीव ने अनंतबार बाह्यमुनिपना धारण किया, पाँच

महाव्रतादि का पालन किया; परंतु उस महाव्रतादि के शुभराग का ही अनुभव किया, अजीव का ही अनुभव किया। स्त्री-वस्त्र-धन शरीरादि तो जड़ हैं, पुद्गल हैं—इनका अनुभव तो आत्मा कर ही नहीं सकता, मात्र राग का ही अनुभव कर सकता है। इसलिये आचार्यदेव ने ''शरीर का अनुभव छोड़ दो''—ऐसा नहीं कहा, अपितु ''राग का अनुभव छोड़ दो''—ऐसा कहा है।

राग से भिन्न ज्ञानानंदस्वभाव का आश्रय लेने से प्रगट होनेवाले अतीन्द्रिय ज्ञानआनंद का अनुभव ही जीव का अनुभव है; राग का अनुभव तो अजीव का अनुभव है। तथा भगवान आत्मा के आश्रय से प्रकट होनेवाली ज्ञानानंद दशा का स्वाद जीव का स्वाद है। ज्ञान, आनंद, शांति आदि का अनुभव तो पर्याय में होता है; परंतु वह अनुभव द्रव्यस्वभाव के आश्रय से प्रकट होता है; इसलिये द्रव्यस्वभाव का आश्रय करना चाहिये।

जिसमें से आदि अनंत केवलज्ञान पर्यायें प्रकट होती हैं, ऐसे ज्ञानानंद आत्मा का आस्वादन करो—क्योंकि आत्मा कभी भी अनात्मा अर्थात् शरीर, कर्म रागादि के साथ एकरूप नहीं हुआ। जब शुभरागरूप व्यवहाररत्नत्रय के साथ यह जीव एकमेक नहीं होता तो फिर परपदार्थों के साथ एकमेक कैसे होगा? पर मैं तादात्म्य न होने से परपदार्थों को हानि-लाभ भी नहीं पहुँचा सकता तथा परपदार्थ भी इस जीव को हानि-लाभ नहीं पहुँचा सकते।

यह आत्मा परपदार्थ अर्थात् शरीर-कर्म-देव-गुरु-शास्त्र के साथ तो तादात्म्य हुआ नहीं, परंतु अपनी पर्याय में अपने कारण से उत्पन्न होनेवाले राग के साथ भी नित्य तादात्म्यरूप नहीं होता। यद्यपि रागादि के साथ आत्मा का अनित्य तादात्म्य संबंध है; तथापि त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि से तो शुभाशुभ भावों के साथ भी वह तादात्म्यरूप नहीं होता, क्योंकि आत्मा अनंतगुणों के साथ एकरूप है, वह अन्य द्रव्यों के साथ एकरूप नहीं होता।

ज्ञानी को यद्यपि पर्याय का ज्ञान भी वर्तता है तथा पर्याय में होनेवाले परपदार्थों के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध का भी ज्ञान होता है तथापि द्रव्यदृष्टि में पर्याय और निमित्त-नैमित्तिक संबंध का निषेध ही वर्तता है।

आत्मा कभी राग के साथ एकमेक नहीं हुआ। इसलिये राग की दृष्टि छोड़ी जा सकती है। आचार्य कहते हैं कि जिससे एकरूप नहीं हुआ उसकी दृष्टि छोड़ दे; और जिससे एकरूप है उसकी दृष्टि कर। भगवान आत्मा और राग के बीच में संधि है, भेद है—इसलिये राग से

पृथक् आत्मा का अनुभव किया जा सकता है।

अहो! यह तो दिगंबर धर्म की बात है। आत्मा ने कभी राग-द्वेषरूपी कपड़े पहने ही नहीं, इसलिये वह तो अनादि से दिगंबरस्वभावी ही है। दिगंबर धर्म कोई पक्ष नहीं, वह तो वस्तु का स्वरूप है। दिगंबर संतों की वाणी तो रामबाण औषधि है, फिर भी भगवान आत्मा का वर्णन करने में शब्द कम पड़ते हैं।

अहो! ऐसा ज्ञान और राग का भेदज्ञान करने की जीव को फुरसत नहीं मिलती। २३ घंटे तो स्त्री-पुत्रादि को प्रसन्न करने में बीत जाते हैं। किसी शुभभाव में एक घंटा धर्म सुनने गया तो दया-दान-पात्रादि शुभराग में धर्म बतानेवालों ने वह एक घंटा भी लूट लिया क्योंकि दया-दानादि में धर्म नहीं है; धर्म तो पर से पृथक् आत्मा का अनुभव करने में है, दया-दान तो मात्र पुण्य-बंध के कारण हैं।

आत्मा शरीरादि से निश्चय से भिन्न है, परंतु व्यवहार से एक है—ऐसा नहीं है। यहाँ तो आचार्यदेव कहते हैं आत्मा पर के साथ किसी भी प्रकार से कभी भी एकत्वरूप नहीं होता। इसलिये आचार्यदेव ने पर के प्रति होनेवाले मोह से भेदज्ञान कराया है।

मोह अर्थात् वृथा अर्थात् निष्फल, अमोह अर्थात् सफल। मोह तो वृथा है, झूठा है, आत्मा में नहीं है। इसलिये हे भाई! अब तो मोह का अनुभव छोड़ो। ज्ञायकस्वरूपी भगवान आत्मा अज्ञायक ऐसे रागादि के साथ कभी भी एकत्वरूप नहीं होता। इसलिये ज्ञायकस्वभावी एक आत्मा का अनुभव करो।

देखो! यह जीव अधिकार है। जीवस्वभावी भगवान आत्मा रागादि अजीव के साथ कभी एकरूप नहीं होता, इसलिये अजीव से दृष्टि हटाकर जीव का अनुभव करो।

आत्मा का अनुभव करने की यह बात जिसे सुनने को ही नहीं मिले वह उसका विचार कैसे करेगा और अनुभव कब करेगा? ज्ञान में यदि मार्ग का निर्णय ही न करे तो अनुभव कहाँ से होगा? इसलिये यह बात रुचिपूर्वक सुनकर, विचार कर, आत्मा का आस्वाद करना चाहिये।

बंधोदयस्थान जीव के नहीं

परमपूज्य दिगम्बर आचार्य कुंदकुंद के प्रसिद्ध परमागम 'नियमसार' की ४०वीं गाथा एवं उसमें समागत कलश नं० ५६ व ५७ पर हुए पूज्य कानजीस्वामी के प्रवचनों का सार यहाँ दिया जा रहा है। मूल गाथा इसप्रकार है:—

णो ठिदिबंधट्ठाणा पयडिट्ठाणा पदेसठाणा वा।
णो अणुभागट्ठाणा जीवस्स ण उदयठाणा वा॥४०॥

जीव के स्थितिबंधस्थान नहीं हैं, प्रकृतिस्थान नहीं हैं, प्रदेशस्थान नहीं हैं, अनुभागस्थान नहीं हैं, और उदयस्थान नहीं हैं।

विकाररहित त्रिकाली एकरूप शुद्धजीव को यहाँ जीव कहा है।

शुद्ध जीव कैसा है? एकसमय का विकार, कर्म, उघाड़ या निमित्त त्रिकालीशुद्धस्वभाव में नहीं हैं। जीव का शुद्धभाव त्रिकाली एकरूप है—ऐसे जीव की प्रतीति करना वह सम्यग्दर्शन है।

यहाँ जो जीव कहा है, वह द्रव्य-गुण-पर्यायसहित जो प्रमाण का विषय होता है, वह जीव नहीं लेना है, विकारीपर्याय वाला अथवा निमित्त के संबंधवाला जीव भी नहीं लेना है; किंतु विकार से रहित एकरूप त्रिकाली शुद्धभाववाला जीव लेना है। ऐसे जीव की यथार्थ श्रद्धा और ज्ञान करके अपने त्रिकालीस्वभाव की ओर ढले तो उस जीव को विकार का अथवा पर्याय का यथार्थ ज्ञान होता है और इसप्रकार दोनों पक्षों काज्ञान होने पर संपूर्ण जीव का ज्ञान यथार्थ होता है और वही प्रमाणज्ञान है। इस गाथा में शुद्धजीव कैसा है उसका विवेचन करते हैं।

इस गाथा में प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, अनुभागबंध, प्रदेशबंध के स्थानों का तथा उदय के स्थानों का समूह जीव के नहीं है—ऐसा कहा है।

अपने शुद्धस्वभाव में मलिनता या अपूर्णता नहीं तथा कर्म का निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं।

सदा निरूपराग जिसका स्वरूप है—ऐसे निरंजन (निर्दोष) निजपरमात्मतत्त्व अथवा

शुद्धजीव का स्वरूप कैसा है, वह कहते हैं। शुद्ध जीवतत्त्व मलिनता से रहित है। किसी पदार्थ में अन्य उपाधि की समीपता के निमित्त से हुई उपाधि और अनुरूप विकारीभाव को उपराग कहते हैं। शुद्धजीव में ऐसा उपराग नहीं है। जिसप्रकार स्फटिक के समीप लाल डंक हो तो उसमें लाल झाईं पड़ती है और काला फूल हो तो काली झाईं पड़ती है। लाल के समय काली और काले के समय लाल झाईं नहीं पड़ती। काली अथवा लाल झाईं उपाधि के अनुरूप है और उपाधि निमित्त है; फिर भी लाल डंक के कारण लाल झाईं नहीं पड़ी है, स्फटिक की योग्यता के कारण लाल झाईं पड़ती है; तो भी लाल डंक के समय काली झाईं पड़ने लगे—ऐसा नहीं हो सकता। उसीप्रकार आत्मा में दर्शनमोहनीय कर्म का उदय हो और ज्ञान रुक जाये-ऐसा नहीं बनता, उससे तो श्रद्धा में विपर्यास होता है; फिर भी वह विपरीतता कर्म के कारण हुई नहीं है। एक ही समय में आठों कर्म उदय में हैं। ज्ञान की हीनदशा में ज्ञानावरणी कर्म का उदय अनुकूल निमित्त है; किंतु ज्ञानावरणी का उदय राग को अनुकूल नहीं है।

इसप्रकार ज्ञान, दर्शन तथा वीर्य की हीनदशा, श्रद्धा व चारित्र की विपरीतदशा, इत्यादि को उपराग-औपाधिकभाव कहते हैं और वे तत्संबंधित कर्मों के अनुरूप हैं; तथापि कर्मों के कारण मलिनता नहीं है। हाँ, उस मलिनता और कर्मों में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है और वह संबंध भी मात्र एकसमय की पर्याय में है; किंतु त्रिकाली शुद्धजीव में वह मलिनता नहीं है और कर्म के साथ का निमित्त-नैमित्तिक संबंध भी नहीं है। ज्ञान, दर्शन, वीर्य की हीन अवस्था को, श्रद्धा को, चारित्र की विपरीत अवस्था को तथा नाम, गोत्र, आयु, वेदनीय की ओर के लक्षवाले भाव को शुद्धजीव नहीं कहते। क्योंकि पर्याय में रहनेवाले राग-द्वेष तथा अपूर्णता निकल जाती है—इसलिये जीव का स्वरूप नहीं है। राग-द्वेष तथा हीनता पर्याय में होने पर भी उन्हें व्यवहार कहकर, गौण करके, जीव में वे नहीं हैं—ऐसा कहकर द्रव्यदृष्टि करवाई है। अतः शुद्धजीव निर्दोष है।

द्रव्यकर्मों के स्थितिबंधस्थान तथा उसप्रकार की जीव की पर्याय की योग्यता शुद्धजीव में नहीं है। निजपरमात्मतत्त्व को वास्तव में द्रव्यकर्म के जघन्य, मध्यम अथवा उत्कृष्ट स्थितिबंध स्थान नहीं हैं।

जीव अपने स्वभाव को चूककर राग-द्वेषादि करता है तब अल्पस्थिति के, मध्यमस्थिति के अथवा उत्कृष्ट स्थिति के पुद्गलकर्म बँधते हैं, वह जड़कर्मों की स्थिति है

और उन कर्मों का संबंध पर्याय के साथ है; किंतु शुद्धजीव में ऐसे स्थितिबंधस्थान नहीं हैं। पुनः जितनी स्थिति का कर्म बँधता है—उसप्रकार की योग्यता जीव की विकारी पर्याय में रहती है; किंतु वह योग्यता तथा कर्म की स्थिति शुद्धजीव में नहीं है। जितने प्रमाण में प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभागबंध जड़कर्म में प्रड़ता है उतने प्रमाण में योग्यता आत्मा की एक समय की पर्याय में रहती है। चारों प्रकार की योग्यता आत्मा की आत्मा के कारण से है और पुद्गलकर्म की पुद्गलकर्म के कारण से है। कोई किसी के कारण से नहीं है किंतु अपने-अपने कारण से ही है।

यहाँ स्थितिबंध की बात चलती है। जैसे आम का वृक्ष अमुक वर्ष में पके और अमरूद का अमुक वर्ष में—बीज की फलरूप होने की इतनी स्थिति है; उसीप्रकार आत्मा की पर्याय में होनेवाले परिणामानुसार अमुक स्थिति के कर्म बँधते हैं—वह स्थितिबंध है; परंतु उन कर्मों का संबंध पर्याय में है। एकसमय की पर्याय अभूतार्थ है-इसलिये शुद्धजीव में उसका अभाव कहा है। शुद्धत्रिकालीस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करना वह सम्यग्दर्शन का कारण है।

द्रव्यकर्मों के प्रकृतिबंधस्थान तथा उसप्रकार की जीव की पर्याय की योग्यता शुद्ध जीव में नहीं है।

ज्ञानावरणादि अष्टविध कर्मों का उन-उन कर्मों के योग्य जो पुद्गलद्रव्य का स्व-आकार वह प्रकृतिबंध है। उनके स्थान निरंजन निजपरमात्मतत्त्व के नहीं हैं।

जीव जैसे भाव करता है, उसीप्रकार के कर्मों की प्रकृति का बंध होता है। ज्ञानावरणीकर्म ज्ञान को रोके, दर्शनावरणीकर्म दर्शन को रोके—इसप्रकार जीव को संसार में भिन्न-भिन्न कर्मों की प्रकृति का बंध निमित्तरूप होता है और उसीप्रमाण में जीव की एकसमय की पर्याय में योग्यता है। उस योग्यता का कर्म की प्रकृति बँधाने में निमित्त-नैमित्तिक संबंध है; किंतु वह योग्यता और निमित्त-नैमित्तिक संबंध त्रिकालीस्वभाव में नहीं हैं। त्रिकालीस्वभाव तो एकरूप शुद्ध है। कोई मनुष्य कई बार चोरी करे इसलिये वह सदैव चोरी करेगा ही ऐसा कोई नियम नहीं है—उसका स्वरूप नहीं है। चोरी क्षणिक अपराध है, त्रिकाल में वह अपराध नहीं है। त्रिकाली शुद्धस्वभाव में राग-द्वेष तथा हीनता की योग्यतावाली पर्याय नहीं है तथा प्रकृतिबंध भी नहीं है। ऐसे त्रिकालीस्वभाव की श्रद्धा करने से पर्याय में जो कर्म के साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, वह क्रमशः टूटकर वीतराग दशा की प्राप्ति होती है।

द्रव्यकर्म के प्रदेशबंधस्थान तथा उसीप्रकार की जीव की पर्याय की योग्यता शुद्धजीवों में नहीं है।

अशुद्ध अन्तःतत्त्व के (अशुद्ध आत्मा के) और पुद्गलकर्म के प्रदेशों का परस्पर प्रवेश वह प्रदेशबंध है। ये बंध के स्थान भी निरंजन निजपरमात्मतत्त्व के नहीं हैं।

विकारी पर्याय को अशुद्ध अन्तःतत्त्व कहते हैं, कारण कि वह अपनी एकसमय की पर्याय है। कर्म को बाह्यतत्त्व कहा है तथा त्रिकाली शुद्धस्वभाव को शुद्ध अन्तःतत्त्व कहा है। जीव अपना स्वभाव चूककर पर्याय में ज्ञान की हीनता, दर्शन की हीनता तथा राग-द्वेषादि भाव करता है, वह मलिनता है और उस मलिनता के योग्य कर्म का बंध पड़ता है और वे जड़कर्म आत्मा के एकक्षेत्र में आकर रहते हैं। इसप्रकार मलिन पर्याय एवं जड़कर्म का निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, वही प्रदेशबंध कहा जाता है। यदि शुद्धस्वभाव की दृष्टि से देखा जावे तो मलिनता और जड़कर्म का प्रदेशबंध शुद्धस्वभाव में है ही नहीं। यदि स्वभाव में भी मलिनता और वह संबंध हो तो स्वभाव में कभी उसका अभाव नहीं हो सकता। उसप्रकार की योग्यता तो पर्याय में उसके अपने कारण ही है, कहीं कर्म के कारण वह मलिनता नहीं है। वह योग्यता मात्र एकसमय की ही है। शुद्धस्वभाव में वह योग्यता नहीं है। गन्ने के ऊपर की छाल गन्ने का वास्तविक स्वरूप नहीं है, उस छाल को दूर करने पर सफेद मीठे रसवाला गन्ना निकलता है; उसीप्रकार विकारीभाव गन्ने के ऊपरी छिलके के समान हैं। अशुद्धतत्त्व से रहित त्रिकालीस्वभाव निजपरमात्मतत्त्व अंदर सफेद और मीठे गन्ने के समान आनंदकंद, ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि शक्ति से भरपूर पड़ा है। पर्यायबुद्धि एवं एक समय के प्रदेशबंध का निषेध करके शुद्धस्वभाव की दृष्टि करना ही सम्यग्दर्शन का कारण है।

कर्म के अनुभागबंधस्थान तथा जीव की पर्याय की उसप्रकार की योग्यता शुद्धजीव में नहीं है।

शुभाशुभकर्म की निर्जरा के समय सुख-दुःखरूप फलदान की शक्तिवाला अनुभागबंध है। इसके स्थानों का भी अवकाश निरंजन निजपरमात्मतत्त्व में नहीं है।

जीव जब अपना शुद्धस्वभाव चूकता है तभी पर्याय में राग-द्वेष होता है और जैसे रसवाले तीव्र या मंद परिणाम करता है वैसे ही रसवाले-अनुभागवाले कर्मों का बंध पड़ता है। कर्म में रस होता है, उसके निमित्त से सुख-दुःखरूप फल आता है; किंतु कर्म का अनुभाग

कर्म में होता है; वह आत्मा को अनुभाग नहीं देता तथा आत्मा की पर्याय का अनुभाग आत्मा की पर्याय में होता है; दोनों ही स्वतंत्र हैं तथापि पर्याय में एक-दूसरे को निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। यदि शुद्धस्वभाव की दृष्टि से देखें तो उस पर्याय की योग्यता तथा कर्म के अनुभागबंधस्थान शुद्धजीव में नहीं हैं। ज्ञान-दर्शन की हीनावस्था, राग-द्वेषादि की अवस्था के असंख्य प्रकार पर्याय में होते हैं—किंतु ध्रुवशुद्धचैतन्य एकाकार स्वभाव में उनका अभाव है; अत: शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करना वही धर्म का कारण है।

द्रव्यकर्म तथा भावकर्म का उदय शुद्धजीव में नहीं है।

पुन: द्रव्यकर्म तथा भावकर्म के उदय के स्थानों का भी अवकाश निरंजन-निजपरमात्मतत्त्व में नहीं है।

द्रव्यकर्म अर्थात् ज्ञानावरणादि जड़कर्मों का उदय तथा उस ओर के लक्ष से होनेवाली पर्याय की हीनता एवं राग-द्वेषादि को भावकर्म का उदय कहते हैं। ज्ञान, दर्शन, वीर्य की हीनता, श्रद्धा तथा चारित्र की विपरीतता इत्यादि अनेक प्रकार की योग्यता पर्याय में है; किंतु है वह मात्र एकसमय की अवस्था ही। एकसमय की हीनता अथवा विपरीतता तथा जड़कर्म के उदय का त्रिकाली शुद्धस्वभाव में अभाव है। अशुद्धता ने कभी स्वभाव में प्रवेश किया ही नहीं; इसलिये ऐसे त्रिकाली शुद्धस्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान करने से धर्म होता है। कर्म, विकार अथवा पर्याय के आश्रय से धर्म कभी नहीं होता। अत: यहाँ गाथा में कहा कि प्रकृतिबंध, स्थितिबंध, प्रदेशबंध, जड़कर्म के उदय के ऊपर का तथा उसप्रकार की एकसमय की पर्याय की योग्यता के ऊपर का भी लक्ष छोड़कर शुद्धजीवतत्त्व का लक्ष कर तो धर्मदशा प्रगट होगी।

इसीप्रकार का भाव श्रीमद् अमृतचंद्रसूरि ने श्रीसमयसार की आत्मख्याति नामक टीका में समागत ११वें कलश में व्यक्त किया है। जो इसप्रकार है:—

न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावादयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम् ॥११॥

जगत मोहरहित होकर सर्व तरफ से प्रकाशमान ऐसे उस सम्यक्स्वभाव का ही

अनुभव करो कि जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्वादि भाव स्पष्टपने ऊपर तैरते होने पर भी वास्तव में स्थिति प्राप्त नहीं करते।

त्रिकाली शुद्धस्वभाव में विकारीभाव कभी प्रविष्ट नहीं हुए, ऐसे सम्यक् शुद्धस्वभाव का अनुभव करो।

अहो जगत के जीवो! निमित्त, विकार औरपर्याय की रुचि छोड़कर सब तरफ से प्रकाशमान ऐसे शुद्धस्वभाव का ही अनुभव करो। चैतन्य सम-स्वभावी सूर्य एकसमय में संपूर्ण पड़ा है, उसको स्मरण करके अभूतार्थ ऐसे विकार का विस्मरण करो। यहाँ मुनिराज अखिल जगत को निमंत्रण देते हैं।

शुभाशुभ परिणामों का शुद्धात्मा में प्रवेश नहीं है। जैसे जल में तेल ऊपर ही तैरता है वैसे ही आत्मा में राग-द्वेष ऊपर ही ऊपर तैरते हैं। आत्मा कर्मों से बँधा है और कर्म आत्मा के साथ एकक्षेत्र में रहते हैं, वह निमित्त-नैमित्तिक संबंध एकसमय की विकारी पर्याय के साथ है; शुद्धस्वभाव में वह विकार प्रवेश नहीं करता। जिसप्रकार बंद मकान में बाहर का मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकता; उसीप्रकार एकसमय का संसार त्रिकाली स्वभाव में प्रवेश नहीं कर सकता। ज्ञान-दर्शन की हीनावस्था, रागद्वेष की विकारी अवस्था तो एकसमय की पर्याय में है; वस्तुस्वभाव तो एकरूप सदृश अनादि-अनंत है। इसलिये ध्रुवपदार्थ की श्रद्धा करो, उसकी श्रद्धा करने से अष्टकर्मों का तथा राग-द्वेष का सर्वथा दृष्टि अपेक्षा से नाश हो जायेगा और वीतरागता पूर्ण होने पर राग-द्वेष का पूर्णरूपेण अभाव होकर आठ कर्मों का नाश हो जायेगा। त्रिकाल शक्ति जो भरी है, उसमें से केवलज्ञान प्रगट होगा। अतः ऐसे शुद्ध स्वभाव का अनुभव करो।

४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए मुनिराज दो श्लोक कहते हैं:—

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम्।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम्॥५६॥

जो नित्य शुद्ध चिदानंदरूपी संपदाओं की उत्कृष्ट खान है और जो विपदाओं का अत्यंत रूप से अपद है अर्थात् जहाँ विपदाओं का अत्यंत अभाव है—ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ॥५६॥

शुद्ध आत्मपद, ज्ञान और आनंद का भंडार है और विभाव के अत्यंत अभावरूप है।

शुद्ध आत्मपद ज्ञान और आनंदरूपी संपदा की खान है। उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता करने से ज्ञान और आनंद की पर्यायें प्रवाहित होती हैं, जो कभी विनष्ट नहीं होतीं, उसमें किसी भी जाति की विपदा नहीं; अतः शुद्धपद एक ही शरण है। पैसा, मकान, स्त्री, पुत्रादि कोई भी शरण नहीं, क्योंकि मरण समय वे कोई भी सहायक नहीं होते; किंतु यदि शुद्ध स्वभाव की श्रद्धा-ज्ञान, एकाग्रता जीवन में की हो तो वही शरणरूप है। शुद्धस्वभाव में विकार का अभाव है, संसार अथवा विकार एकसमय की पर्याय में है, किंतु त्रिकालीस्वभाव में वह नहीं है। मुनिराज छठी-सातवीं भूमिका में झूलते थे। वे कहते हैं कि मैं इस शुद्धपद का ही अनुभव करता हूँ।

इसप्रकार शुद्धपद की श्रद्धा, ज्ञान और एकाग्रता करना ही धर्म है।

यः सर्वकर्मविषभूरुहसंभवानि
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुंक्तेऽधुना सहजचिन्मयमात्मतत्त्वं
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति संशयः कः ॥५७॥

शुभ और अशुभ—सर्वकर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव इसी समय सहज चैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है वह जीव अल्पकाल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है? ॥५७॥

आत्मा ज्ञान-दर्शनादि की शक्ति अपेक्षा से नित्य है और समय-समय के परिणमन की अपेक्षा से अनित्य है।

जिन्हें आत्मशांति और धर्म प्राप्त करना हो उन्हें क्या करना? उन्हें शुद्ध आत्मतत्त्व का अनुभव करना योग्य है। शरीर, मन, वाणी तो जड़ हैं, उनसे आत्मा भिन्न है, उनकी बात यहाँ नहीं है—किंतु आत्मा में दो पक्ष पड़ते हैं। आत्मा स्वयं नित्य रहकर भी अवस्था में प्रतिक्षण पलटता है। आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अस्तित्वादि अनंत गुणों का भंडार है। वे अनंत गुण आत्मा में अभेद हैं, अखंड हैं, नित्य हैं। जो जीव उनका अभेदरूप से अनुभव करता है, वह अवय ही मुक्ति को प्राप्त होता है। ✱

द्रव्यसंग्रह प्रवचन

वृहद्द्रव्यसंग्रह पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन सन् १९५२ में हुए थे। जिज्ञासु पाठकों के लाभार्थ उन्हें यहाँ क्रमशः दिया जा रहा है।

[गतांक से आगे]

अब अजीव अधिकार कहते हैं। भगवान आत्मा शुद्ध है, ज्ञान का पिण्ड है। चिदानंद एकस्वभाव का धारक परमात्मा ही उपादेय है। फिर भी हेयरूप जो अजीव द्रव्य है, उसका आठ गाथाओं द्वारा निरूपण करते हैं। पहले हेय तत्त्व का ज्ञान होने से बाद में उपादेय पदार्थ की स्वीकृति होती है—यह व्यवहार का कथन है। वास्तव में तो शुद्ध आत्मा उपादेय है—ऐसा ज्ञान होने से हेय तत्त्व का आदर छूट जाता है।

अज्जीवो पुण णोओ पुग्गल धम्मो अधम्म आयासं।
कालो पुग्गल मुत्तो रूवादिगुणो अमुत्ति सेसा दु॥१५॥

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल—ये पाँचों अजीव द्रव्य हैं। उनमें से पुद्गल तो मूर्तिमान दृश्य पदार्थ है—क्योंकि वह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन गुणों का धारक है। और बाकी के चार धर्म, अधर्म, आकाश, काल अरूपी हैं। जीव से अजीव का स्वरूप भिन्न है—ऐसा बताकर जीव आदरणीय है और अजीव हेय है—ऐसा कहेंगे।

जीव पदार्थ की व्याख्या करने के बाद अजीव की व्याख्या करते हैं। अजीव में जीवपना नहीं है—ऐसा बतलाते हैं। पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अजीव हैं। जीव में ज्ञानदर्शनादि हैं, वे अजीव में नहीं हैं।

कैसा है जीव? उपयोग लक्षणवाला है। जिसमें उपयोग नहीं है, वह अजीव है। संपूर्ण रीति से विमल अर्थात् द्रव्य-गुण-पर्याय का प्रकाशक केवलज्ञान है। जो सबको देखता है वह केवलदर्शन है। जीव स्वयं का भान करके परिपूर्ण दशा प्रगट करता है, उस जानने-देखने की पर्याय को शुद्धोपयोग कहते हैं, वह अजीव में नहीं है।

जीव को छद्मस्थ अवस्था में मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान होते हैं, वे अधूरे (अपूर्ण) हैं। इससे उनको अशुद्ध कहा है। इसप्रकार शुद्ध उपयोग और अशुद्ध उपयोग अजीव

में नहीं है, अजीव को कुछ खबर नहीं है। ज्ञानी को स्वपर-प्रकाशक ज्ञान विकसित है। वह जानता है कि संसार में जड़पदार्थ उपयोगरहित हैं।

आत्मा में सुख-दुःख, रति-अरति के अनुभव को कर्मफल चेतना कहते हैं। विकारी फल का अनुभव करना वह कर्मफल चेतना है। पैसा आने से हर्ष होना, निरोगता में खुश होना, रोग में शोक होना—ये सब जड़ में नहीं है, शरीर को सुख-दुःख नहीं है। अज्ञानी मानता है कि शरीर के दुःख शरीर भोगता है, लेकिन यह बात असत्य है। शरीर को ज्ञान नहीं है, उसीप्रकार सुख-दुःख नहीं है। जगत के सुख-दुःख की बात चलती है। यह ठीक रहा, यह ठीक नहीं रहा; इत्यादि प्रकार की कल्पना जो जीव भोगता है, वह जीव की पर्याय में है, जीव के द्रव्य-गुण में नहीं है; उसीप्रकार अजीव में नहीं है।

कोई प्रश्न करता है कि शरीर में वात रोग होने से चीखता चिल्लाता है न?

समाधान—'नहीं'—शरीर में वेदन नहीं, शरीर के लिये भी नहीं। स्वयं के अज्ञान के कारण अर्थात् शरीर पर ममता के कारण से है। 'मैं शरीर हूँ, मैं जड़ हूँ'—ऐसी खबर शरीर को नहीं है। कर्म, शरीर, वाणी, पैसा, लड्डू, दाल-भात को खबर नहीं कि हम कौन हैं? और हम पर कौन राग करता है? जीव सब जानता है, शरीर की रोग अथवा निरोग अवस्था जीव के द्वारा जानी जाती है। अज्ञानी जीव शरीर, वस्त्र, जेवर वगैरह को स्वयं के मानकर हर्ष-शोक का वेदन करता है; वह वेदन जीव में है, जड़ में नहीं, अजीव में कर्मफल चेतना नहीं होती।

कर्मचेतना—अजीव में कर्मचेतना नहीं है। मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्यय ये चार ज्ञान अपूर्ण हैं। इससे चारों को अशुद्ध उपयोग कहते हैं। आत्मा ज्ञातादृष्टा है, वह चार अपूर्ण अवस्था में अटके या रुके—वह अशुद्ध कार्य है, शुद्ध कार्य नहीं है, वह कर्मचेतना है। और फिर स्वयं की चेष्टापूर्वक इष्ट तथा अनिष्टरूप से राग-द्वेषरूप जो परिणाम होता है, वह भी कर्मचेतना है। जड़ का कार्य तो आत्मा करता ही नहीं है, अपूर्ण ज्ञानरूपी कार्य तथा राग-द्वेषरूपी कार्य को कर्मचेतना कहते हैं, वह अजीव में नहीं है।

केवलज्ञान को शुद्धचेतना कहते हैं। आत्मा शुद्धस्वभाव में परिपूर्ण संलग्न हो गया है वह शुद्धचेतना है। आत्मा के भान पश्चात् केवलज्ञान प्रगट होता है, वह शुद्धचेतना है।

ऐसे लक्षणवाला उपयोग तथा चेतना जिसमें नहीं है, वह अजीव है। यहाँ उपयोग अर्थात् ज्ञान का व्यापार और चेतना यानी जिसमें एकाग्र होता है, उसको चेतना कहते हैं। शरीर,

कर्म, मन, वाणी आदि पुद्गल तथा धर्म, अधर्म, आकाश और काल किसी को ज्ञान का उपयोग नहीं है तथा उनको किसी वस्तु में एकाग्र होना नहीं होता है; ऐसा बताकर जीव और अजीव के बीच भेदज्ञान कराना है। आत्मा आत्मा में है, शरीर शरीर में है, कर्म कर्म में है। आत्मा शरीर को अथवा कर्म को बाधा नहीं पहुँचाता है। जीव उपयोगस्वरूप है। अधूरा ज्ञान करे अथवा पूरा (संपूर्ण) ज्ञान करे अथवा राग-द्वेष करके हर्ष-शोक को भोगे; यह जीव का कार्य है, जड़ का नहीं है। वह जड़ का कार्य नहीं है, जड़ के लिये नहीं है, ऐसा भेदज्ञान कराना है।

अब अजीव के भेद बतलाते हैं।

(१) पुद्गल—जो मिलता है, बिछुड़ता है-वह पुद्गल है, रूपी है और वे अनंतानंत हैं।

(२) धर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल स्वयं गति (गमन) करते हैं, उसमें निमित्त होता है। वह अरूपी, अखंड, लोकाकाश प्रमाण है।

(३) अधर्मद्रव्य—जीव और पुद्गल गतिपूर्वक स्थिति को प्राप्त होते हैं, उसमें निमित्त है। वह अरूपी, अखंड, लोकाकाश प्रमाण है।

(४) आकाशद्रव्य—सब द्रव्यों को अवगाहन में निमित्त है, वह लोकाकाश में व्याप्त है।

(५) कालद्रव्य—सब द्रव्यों को परिणमन में निमित्त है। लोकाकाश के एक-एक प्रदेश पर स्थित ऐसे असंख्य कालाणु हैं। रत्न की राशि जैसे रह गये हैं। सर्वज्ञ ने प्रत्यक्ष देखा है और युक्ति तथा आगम से सिद्ध हो सकते हैं।

ये पाँच अजीव द्रव्य हैं।

पुद्गलद्रव्य—जिसका पूरण गलन स्वभाव है, वह पुद्गल है। पृथ्वी वगैरह पुद्गल की पर्याय है। शरीर युवा हो तो पुष्ट लगता है, वृद्ध हो तो कमजोर लगता है, पैसा आता और जाता है, कर्म आते और जाते हैं, कोई मिलता है कोई खंड-खंड होता है—यह सब पुद्गल का कार्य है। शरीर, मन, वाणी, वगैरह को पुद्गल की पर्याय जानना। जीव पुद्गल को जाननेवाला है, उसका कर्त्ता-हर्त्ता नहीं है—इसप्रकार माने तो पर का अभिमान दूर हो जाये। व्यापारी अभिमान करता है कि मैं दुकान पर न बैठूँ तो कैसे चले? दुकान और उसमें रखे हुए पदार्थ पुद्गल हैं, वे अपने कारण से आते-जाते हैं, अज्ञानी अभिमान करता है। पानी में से बर्फ होता है और बर्फ में से पानी होता है; दाल, भात, साग होता है—वह सब पुद्गल का स्वभाव है, जीव का नहीं है। पर का अभिमान छोड़ना और स्वयं ज्ञानस्वभाव में रहना।

धर्मद्रव्य जीव और पुद्गल को गति में निमित्त है, अधर्मद्रव्य स्थिति में निमित्त है, आकाश सब पदार्थों को अवगाहन देता है—ऐसे लक्षणवाला है, कालद्रव्य परिणमन में निमित्त है; इसप्रकार जानना। उनमें पुद्गलद्रव्य, मूर्त अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण वाला है। शरीर, मन, वाणी, दाल, भात, रोटी, वगैरहरूपी हैं, मूर्त हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल अमूर्त हैं अथवा अरूपी हैं, आत्मा भी अरूपी है। ये चार अरूपी और एक पुद्गलरूपी है—ऐसा जानना। जिसप्रकार सर्व जीवों में अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख, अनंत वीर्य साधारण हैं, भव्य अथवा अभव्य सब में शक्तिरूप से हैं; उसीप्रकार स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चार गुण पुद्गलों में साधारण हैं। अग्नि में रस भी है, पानी में गंध भी है, सब गुण रहते हैं। पुद्गल को यह ज्ञात नहीं है कि मेरे में ये चार गुण हैं। आत्मा उन सबको जानता है, मेरे में ज्ञानादि गुण हैं और पुद्गलों में स्पर्शादि गुण हैं; इसप्रकार भेदज्ञान कराया है। जिसप्रकार शुद्ध-बुद्ध एकस्वभाव के धारक सिद्ध जीव में केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनंत वीर्य, अनंत सुख ऐसे अनंत चतुष्ट अतीन्द्रिय हैं, वे इंद्रियों से जाने जायें ऐसा नहीं है; उसीप्रकार शुद्ध परमाणु में रूप-गंध-रस और स्पर्श, इंद्रिय से दिखें—ऐसा नहीं है।

कोई प्रश्न करता है कि परमाणु मूर्त है, इसलिये दिखना चाहिये? 'नहीं' ऐसा नियम नहीं है, परमाणु-द्रव्य भी अतीन्द्रिय है। वास्तविक रीति से तो छहों द्रव्य अतीन्द्रिय हैं। यह सब दिखता है वह तो जड़ की वैभाविक अवस्था है। वह मूलद्रव्य नहीं है। मूलद्रव्य परमाणु है और वह अतीन्द्रिय है।

कोई पूछता है कि इसमें धर्म क्या हुआ?

समाधान—छहों द्रव्य अतीन्द्रिय हैं। जो इंद्रियों से जाना जाता है, वह स्थूल है, वह मेरी वस्तु नहीं है, और सूक्ष्म परमाणु वह भी मेरी वस्तु नहीं है, मैं तो अतीन्द्रिय ज्ञान-स्वभावी आत्मा हूँ; ऐसा भेदज्ञान करना वह धर्म है।

अब स्थूल पुद्गल की बात करते हैं। जिसप्रकार संसारदशा में राग-द्वेष के कारण कर्म बँधते हैं, और ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य इन चारों में अशुद्धता आती है, कर्म के कारण से अशुद्धता नहीं है, स्वयं के कारण से अशुद्धता है; उसीप्रकार रूक्ष और स्निग्ध के कारण दो अणु के स्कंध से अनंत परमाणु के स्कंध तक में अशुद्धता होती है। यहाँ स्कंध को अशुद्ध कहा है। शरीर, कर्म, हीरा, माणिक, शुद्ध आहार, भगवान का समवसरण, परम औदारिक शरीर,

वगैरह सब स्कंध अशुद्ध हैं। कारण कि अनंत परमाणु मिलकर वे स्कंध होते हैं। अकेला परमाणु सिद्ध जैसा शुद्ध कहा जाता है। किंतु सिद्ध पुनः अशुद्ध नहीं होते हैं, परमाणु पुनः अशुद्ध होता है—इतना अंतर है।

यहाँ अशुद्धता में भी जीव और पुद्गल की स्वतंत्रता बताते हैं। स्वयं की स्वतंत्रता माने तब पर की स्वतंत्रता मानता है। 'मेरी अशुद्धता कर्म के कारण से नहीं है, लेकिन मेरे कारण से है'—ऐसा समझे, पर से दृष्टि उठावे और विकार क्षणिक है और आत्मा शुद्ध चैतन्य नित्य पदार्थ है—इसप्रकार श्रद्धा-ज्ञान करके मोक्षदशा प्राप्त करता है।

अब परमाणु की जीव के साथ शुद्धता में तुलना करते हैं।

'यह आत्मा पर के प्रति की ममता से रहित है'—ऐसे शुद्ध परमात्मा की भावना से अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के बल से राग-द्वेष आदि का नाश होता है, किसी क्रियाकांड से अथवा शुभभाव से राग का नाश नहीं होता। जिसप्रकार निज परमात्मा की श्रद्धा-ज्ञान-रमणता की एकता के बल द्वारा रागादि स्निग्धता (चिकाश) का नाश होता है और ज्ञान-दर्शन-सुख और वीर्य ऐसे अनंत चतुष्टय शुद्धरूप प्रगट होते हैं; उसीप्रकार परमाणु में रूक्ष, स्निग्ध, जघन्य गुण होने से वह दूसरों के साथ बँधता नहीं है। और जिसप्रकार आत्मा में राग-द्वेष के अंतिम अंश (सूक्ष्मदृष्टि अणु प्रमाण) बंध के कारण नहीं है; उसीप्रकार परमाणु में स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ये चतुष्टय शुद्ध समझना चाहिये।

इसप्रकार पुद्गल का स्वरूप बताया और जीव के साथ तुलना करके कहा कि जीव राग-द्वेष करे तो अशुद्ध होता है और राग-द्वेष दूर करे तो शुद्ध होता है। इसलिये वीतरागता आदरणीय है, राग-द्वेष आदरणीय नहीं है। *[क्रमशः]*

किंचित् भी मचक नहीं

अहो! सम्यग्दृष्टि जीव छह-छह खंड के राज्य में खड़ा हो तथापि उसके ज्ञान में किंचित् भी मचक नहीं आती कि यह मेरा है; और छियानवे हजार अप्सरातुल्य रानियों के बीच में खड़ा हो तथापि उनमे रंचमात्र भी सुखबुद्धि होती नहीं। अरे! कोई नरक की भीषण वेदना के बीच में पड़ा हो तो भी अतीन्द्रिय आनंद के वेदन की अधिकता छूटती नहीं।

इस सम्यग्दर्शन का क्या माहात्मय है, वह जगत को बाह्य दृष्टि से पहचानना कठिन है।

— पूज्य स्वामीजी

ज्ञान-गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा पूज्य स्वामीजी से किये गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर।

प्रश्न- व्रत-नियम-शील-तपादि के शुभराग को अत्यंत स्थूल परिणाम क्यों कहा ?

उत्तर- आत्मस्वभाव सूक्ष्म और इंद्रियों से अगोचर है इसलिये अत्यंत सूक्ष्म है। शुभ परिणाम आत्मस्वभाव से विरुद्ध जाति का है, अतः उसको अत्यंत स्थूल परिणाम कहा है। राग का परिणाम परलक्ष से उत्पन्न होनेवाला विकृत परिणाम है, पराश्रयजन्य परिणाम है, स्थूल लक्षवाला परिणाम है; इसलिये उसे अत्यंत स्थूल परिणाम कहा गया है।

प्रश्न- केवलज्ञानादि क्षायिकभावों को नियमसार में परद्रव्य कहा है, सो समझ में नहीं आया कि आत्मा में ही होनेवाली पूर्णशुद्धपर्याय को परद्रव्य कैसे कहा ?

उत्तर- केवलज्ञानादि क्षायिकभाव हैं और निजस्वभावभाव भी हैं—यह तो सत्य ही है, परंतु किसी अपेक्षावश उन क्षायिकभावों को भी परद्रव्य कहा गया है। बात यह है कि जिसप्रकार परद्रव्य में से अपनी पर्याय नहीं आती; उसीप्रकार क्षायिकभावरूप पर्याय में से भी नवीन पर्याय नहीं आती; अपने द्रव्य में से ही शुद्धपर्याय आती है। इसलिये पर्याय के ऊपर का लक्ष छुड़ाकर द्रव्यस्वभाव का लक्ष कराने के प्रयोजन से केवलज्ञानादि क्षायिकभावों को भी परद्रव्य कहा है।

पर्याय के ऊपर लक्ष करने से विकल्पोत्पत्ति होती है; इसलिये पर्याय पर से लक्ष हटाने के लिये उसे परद्रव्य कहा है। केवलज्ञानादि पर्यायें क्षणिक होने से उन्हें अभूतार्थ भी कहा गया है और त्रिकाली ध्रुवस्वभाव को भूतार्थ कहा गया है। केवलज्ञानादि को पर्याय होने से व्यवहारजीव कहा है तथा त्रिकालीस्वभाव निश्चय जीव है। यह बात बराबर ध्यान में रखने की है कि क्षायिकभाव को अपेक्षावश परद्रव्य कहा गया है।

प्रश्न- अपने ही सत् का ज्ञान करना क्यों महत्त्वपूर्ण है ? पर-सत् का क्यों नहीं ?

उत्तर- अपनी अपेक्षा से अन्य सभी परद्रव्य असत् हैं, स्वयं ही सत् है। स्वयं ही अपना ज्ञाता,

ज्ञेय और ज्ञानरूप सत् है; अतः अपने ही सत् का ज्ञान करना। अपने सत् का ज्ञान करने से अतीन्द्रिय आनन्द की झलक आये बिना रहेगी नहीं। यदि आनंद न आवे तो समझ लो कि हमने अपने सत् का सच्चा ज्ञान किया ही नहीं। मूल में तो अंतर में झुकना-रमणता करना ही सर्वसिद्धांत का सार है।

प्रश्न- ज्ञान सो आत्मा—ऐसा कहकर मात्र ज्ञान के द्वारा ही आत्मा की पहिचान क्यों करायी है? जीव का मूल प्रयोजन तो आनंद प्राप्त करना है न?

उत्तर- आत्मा को पहिचानने के लिये ज्ञान सो आत्मा, ज्ञान सो आत्मा, इसप्रकार कहा है। उसका कारण यह है कि ज्ञान तो प्रगट अंश है—वर्तमान में विद्यमान है और आनंद का अंश कहीं प्रगट नहीं है, प्रगट तो आकुलता है; इसलिये ज्ञान के प्रगट अंश द्वारा ही आत्मा की पहिचान करायी है। ज्ञान के प्रगट अंश को अंदर में लगाये अर्थात् एकाग्रता करे तो जिसप्रकार द्रव्यगुण शुद्ध है उसीप्रकार पर्याय भी शुद्ध हो जाती है। आत्मा को ज्ञान के अंश से पहिचान करवाने का मूल हेतु यही है।

प्रश्न- समयसार सर्वविशुद्धज्ञानाधिकार का मांगलिक करते हुए आचार्यदेव ने कहा है—आत्मा का द्रव्यस्वभाव शुद्ध-शुद्ध है। यहाँ शुद्ध-शुद्ध दो बार प्रयोग करने का आशय क्या है?

उत्तर- प्रथम तो परद्रव्य से भिन्न होने के कारण शुद्ध है और द्वितीय राग से भी भिन्न होने के कारण शुद्ध है। बंध और मोक्ष के विकल्पों से दूरीभूत है। एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यंत समस्त पर्यायों से आत्मस्वभाव अत्यंत दूर है; अतः आत्मस्वभाव शुद्ध-शुद्ध है—बहुत ही शुद्ध है।

प्रश्न- स्वभाव-सन्मुख होने के लिये 'मैं शुद्ध हूँ', 'ज्ञायक हूँ' इत्यादि चिंतवन करते-करते कुछ अपूर्व आनंद का स्वाद आता है। वह आनंद अतीन्द्रिय है अथवा कषाय की मंदता का है? इसका निर्णय कैसे हो?

उत्तर- चिंतवन में कषाय की विशेष मन्दता होने पर उसे आनंद मान लेना तो भ्रम है, वह वास्तविक अतीन्द्रिय आनंद नहीं है। अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आने पर तो राग और ज्ञान की भिन्नता प्रतीति में आती है। इस अतीन्द्रिय आनंद का क्या कहना? अलौकिक है। सच्ची रुचिवाले जीव को कषाय की मन्दता में अतीन्द्रिय आनंद का भ्रम नहीं होता। ✱

समाचार दर्शन

सोनगढ़ :- पूज्य स्वामीजी सुख-शांति में विराजमान हैं। उनका स्वास्थ्य ठीक है। प्रातः श्री समयसार पर एवं दोपहर में प्रवचनसार परमागम पर उनके मार्मिक प्रवचन चल रहे हैं। उनका विहार-कार्यक्रम निम्नानुसार निश्चित हुआ है:-

दिनांक १४-३-७९ से २८-३-७९	राजकोट	१५ दिन
दिनांक २९-३-७९ से २-४-७९	मोरबी	५ दिन
दिनांक ३-४-७९ से ८-४-७९	जामनगर	६ दिन
दिनांक ९-४-७९ से १३-४-७९	बांकानेर	५ दिन
दिनांक १४-४-७९ से २८-४-७९	बंबई	१५ दिन

श्री सीमंधर स्वामी दिगंबर जिनमंदिर का ३९वाँ वार्षिक महोत्सव (फाल्गुन सुदी द्वितीया) एक सप्ताह तक दिनांक २१-२-७९ से २८-२-७९ तक पूजन-भक्ति आदि विशेष कार्यक्रमों के साथ उल्लासपूर्वक मनाया गया। तारीख ११-३-७९ को श्री महावीर कुंदकुंद दिगंबर जैन परमागम मंदिर की प्रतिष्ठा के पाँच वर्ष पूर्ण होने से इस महोत्सव को भी पूजन, विधान, भक्ति आदि कार्यक्रमों सहित उल्लास से मनाया जावेगा।

पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियों के प्रति एलाचार्य मुनिश्री विद्यानंदजी के उद्‌गार व आशीर्वाद

जयपुर :- बापूनगर जैन समाज के आमंत्रण पर दिनांक १५-२-७९ को मुनिश्री विद्यानंदजी का प्रवचन स्थानीय टोडरमल स्मारक भवन में हुआ। मुनिश्री ने टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय एवं पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की गतिविधियों का अवलोकन किया, जिनसे आप अत्यधिक प्रभावित हुए।

समारोह का प्रारंभ ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी ने मंगलाचरण द्वारा किया। इसके पश्चात् श्री गोपीचंदजी पाटनी ने बापूनगर जैन समाज की ओर से मुनिश्री का स्वागत किया। बाद में टोडरमल सिद्धांत महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल ने टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित गतिविधियों की संक्षिप्त जानकारी मुनिश्री को दी। पश्चात् मुनिश्री ने संस्था के प्रति अपने उद्‌गार एवं आशीर्वाद व्यक्त करते हुए कहा:-

पंडित टोडरमलजी ने इसी जयपुर नगरी में जन्म लिया था। वे प्रतिभामूर्ति थे। गृहस्थ होते हुए भी उनका चिंतन बड़ा प्रौढ़, परिपक्व तथा पांडित्यपूर्ण था। उनके मोक्षमार्गप्रकाशक को पढ़ने से ज्ञात होता है कि आपको इतर दर्शनों का भी गूढ़ अध्ययन था। उन्हीं की स्मृति में यह स्मारक तथा महाविद्यालय बना है। टोडरमलजी बड़े ही तार्किक विद्वान थे। स्वयं ही तर्क करना और स्वयं ही उसका उत्तर देना उनकी बड़ी विशेषता थी। जिस टोडरमल स्मारक भवन की चर्चा मैंने बहुत समय से सुनी थी एवं समाचार पत्रों में पढ़ी थी, आज उसे प्रत्यक्ष देखने का योग मिला है। यहाँ के विद्यार्थी विद्वान बनें तथा भारत के कोने-कोने में तत्त्व का प्रचार व प्रसार करें-सभी टोडरमलजी जैसे ही ठोस, दृढ़ता के साथ सिद्धांत के परिपक्व एवं पांडित्यपूर्ण प्रवीण विद्वान तथा अपने विषय में दृढ़ बने, ऐसी मेरी खास भावना है।

इसके संचालक डॉ० हुकमचंद भारिल्ल स्वयं जैनदर्शन एवं संस्कृत के अच्छे विद्वान, लेखक तथा वक्ता हैं। ये बड़े उदार विचार के हैं, सहिष्णु हैं। जो समाजशास्त्री होगा वही धर्मप्रचार में सफल हो सकता है। डॉ० भारिल्ल स्वयं अध्येत्ता पंडित हैं एवं समाजशास्त्री भी हैं। उनकी अपनी देखरेख में यह संस्था कल्पवृक्ष जैसी ज्ञानदान देने में सहायक सिद्ध हो, ऐसा मेरा आशीर्वाद है।

अंत में स्वास्थ्य मंत्री श्री त्रिलोकचंदजी जैन ने मुनिश्री का आभार प्रगट करते हुए संस्था की प्रगति की कामना की।

—डॉ० ताराचंद बख्शी

तीन-तीन वेदी प्रतिष्ठाएँ महोत्सव संपन्न

इंदौर :- स्थानीय रामाशाहजी के मंदिर में २४ जनवरी से १० फरवरी ७९ तक वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव कार्यक्रम सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर सुप्रसिद्ध अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता, पंडित ज्ञानचंदजी, पंडित कन्नूभाई तथा पंडित केशरीचंदजी 'धवल' पधारे। परमात्मप्रकाश एवं पुरुषार्थसिद्धयुपाय पर हुए विद्वानों के प्रवचनों से समाज में व्याप्त अनेक भ्रांतियों का निराकरण हुआ। स्थानीय विद्वान पंडित नाथूलालजी शास्त्री एवं पंडित रमेशचंदजी के भी प्रवचन हुए। सहस्त्रनाम मंडल विधान की समाप्ति पर विशाल रथयात्रा का आयोजन भी किया गया।

— मनोहरलाल काला, मंत्री

गोरमी (म०प्र०) :- दिनांक ३ फरवरी से ११ फरवरी ७९ तक दिगंबर जैन मंदिर में

वेदी प्रतिष्ठा एवं सिद्धचक्र मंडल विधान श्री मक्खनलालजी पांडे की ओर से सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर विद्वद्वर्य पंडित बाबूभाई मेहता तथा पंडित ज्ञानचंदजी के प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया। अन्य विद्वानों में पंडित गंभीरचंदजी वैद्य अलीगंज, पंडित शांतिकुमारजी मौ, ब्रह्मचारी हेमराजजी एवं पंडित बाबूलालजी 'सौजन्य' अशोकनगर भी थे। वेदी-प्रतिष्ठा महोत्सव की संपूर्ण व्यवस्था अ० भा० जैन युवा फैडरेशन की स्थानीय शाखा द्वारा की गई थी। **— नरेशचंद जैन, मंत्री**

जबलपुर :- स्थानीय उपनगर रांझी में नवनिर्मित जिनालय की वेदी-प्रतिष्ठा विशाल आयोजन के साथ २४ फरवरी से २८ फरवरी तक सानंद संपन्न हुई। इस अवसर पर पधारे पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल एवं पंडित ज्ञानचंदजी के प्रवचनों द्वारा अभूतपूर्व प्रभावना हुई। पूज्य एलक श्री सुमतिसागरजी भी पधारे थे। उन्होंने अपने प्रवचनों में कहा कि यह तो पंचकल्याणक जैसा हो रहा है। हम और उपस्थित सभी विद्वान भगवान महावीर की ही बात करते हैं। प्रतिष्ठाविधि पंडित धन्नालालजी ग्वालियर, पंडित ज्ञानचंदजी एवं पंडित कैलाशचंदजी जबलपुर के द्वारा संपन्न हुई। अन्य समागत विद्वानों में पंडित उत्तमचंदजी सिवनी, पंडित जतीशचंदजी जयपुर, पंडित गोविंददासजी खडेरी, ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी जयपुर, ब्रह्मचारी नित्यानंदजी व पंडित सेठ जवाहरलालजी विदिशा प्रमुख थे। मड़िया ब्रह्मचर्याश्रम के त्यागीगण भी पधारे थे। लगभग ३५०० रुपये का सत्साहित्य बिका तथा आत्मधर्म व जैनपथ प्रदर्शक के अनेक ग्राहक बने। **— अभयकुमार जैन**

कलशारोहण सानंद संपन्न

रतलाम :- समीपस्थ सागोदिया नसियाँ में दिनांक ३, ४, ५ मार्च को कलशारोहण का कार्यक्रम श्री झम्मकलालजी बड़जात्या की ओर से सानंद संपन्न हुआ। इस अवसर पर पंडित बाबूभाई मेहता, पंडित कन्नूभाई, श्री मणीभाई, श्री चंदूभाई तथा ब्रह्मचारी अभिनंदनकुमारजी पधारे। आत्मधर्म के ११९ वार्षिक एवं ७ आजीवन ग्राहक बने। लगभग १५०० रुपये का सत्साहित्य बिका। आगन्तुक विद्वानों के प्रवचनों से समाज में महती धर्मप्रभावना हुई।

—मोहनलाल छाबड़ा

चांदखेड़ी में वार्षिक मेला एवं युवा फैडरेशन का अधिवेशन

चांदखेड़ी (खानपुर) :- दिनांक २०-२१ एवं २२ मार्च १९७९ को श्री दिगम्बर जैन

अतिशय क्षेत्र चांदखेड़ी का वार्षिक मेला विभिन्न आयोजनों के साथ संपन्न हो रहा है। इस अवसर पर अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, श्री युगलजी कोटा, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, पंडित ज्ञानचंदजी विदिशा, पंडित कन्नूभाई दाहोद आदि पधार रहे हैं—जिनके प्रवचनों का लाभ भी आगन्तुक महानुभावों को प्राप्त होगा।

दिनांक २१ मार्च को अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन का द्वितीय वार्षिक अधिवेशन भी यहाँ आयोजित किया गया है। सभी युवा साथी अधिक से अधिक संख्या में उपस्थित होकर अधिवेशन को सफल बनावें। **— अखिल बसंल, महामंत्री**

युवा फैडरेशन की नवीन शाखायें गठित

अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन अपने युवा साथियों के सहयोग से निरंतर प्रगति कर रहा है। अभी हाल में भागलपुर (बिहार), टोंक (राज०), झालावाड़ (राज०), कोतमा (म०प्र०) आदि स्थानों पर इसकी शाखायें गठित की गईं हैं। युवकों के साथ-साथ युवतियाँ भी इस संगठन में सक्रिय सहयोग दे रही हैं। पिड़ावा (राज०) में पृथक् से महिला शाखा गठित की गयी है। फैडरेशन के बढ़ते कार्य को देखते हुए मासिक बुलेटिन प्रकाशित किया जाने लगा है। **— अखिल बंसल, महामंत्री**

ग्वालियर (म०प्र०) :- गोरमी में वेदी प्रतिष्ठा के लिय जाते समय पंडित बाबूभाई मेहता ४ फरवरी की सायं एवं ५ फरवरी की सुबह यहाँ रुके। इसी समय झाँसी से डॉ० भारिल्लजी भी आ गये थे। दोनों विद्वानों के स्थानीय दिगंबर जैन तेरापंथी बड़े मंदिर में आध्यात्मिक प्रवचन आयोजित किये गये। समाज ने अच्छी संख्या में पधारकर लाभ उठाया।

दाहोद (गुजरात) :- विगत दिनों ग्वालियर से लौटते हुए अध्यात्मप्रवक्ता पंडित बाबूभाई मेहता दो दिन यहाँ रुके। समयसार एवं मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके तार्किक प्रवचन हुए। इस अवसर पर कुंदकुंद कहान तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट के लिये ६७ हजार की धनराशि की स्वीकृति प्राप्त हुई। **— कन्नूभाई**

भिण्ड (म०प्र०) :- गोरमी वेदी प्रतिष्ठा के समापन के उपरांत पंडित बाबूभाई मेहता ११ एवं १२ फरवरी ७९ को यहाँ पधारे। स्थानीय दिगंबर जैन मंदिर परेट पर दोनों दिन आपके तात्त्विक प्रवचन हुए जिससे समाज में विशेष धर्मप्रभावना हुई। **— इन्द्रसेन बजाज**

झाँसी (उ०प्र०) :- दिनांक २ से ६ फरवरी तक स्थानीय दिगंबर जैन बड़े मंदिर में डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के दोनों समय मोक्षमार्गप्रकाशक पर हृदयस्पर्शी प्रवचन हुए। ५ फरवरी की शाम को जैन क्लब के तत्त्वावधान में एक सभा हुई जिसमें आपका 'अहिंसा' पर बड़ा ही मार्मिक व्याख्यान हुआ। डॉ० भारिल्लजी यहाँ सौ० शुद्धात्मप्रभा की तबियत देखने आये थे।

आगरा :- वेदी प्रतिष्ठा आयोजन में जबलपुर जाते समय डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल एक दिन के लिये आगरा रुके। उनके प्रात: ९ बजे से १० बजे तक एवं अपराह्न ३ बजे से ४ बजे तक श्री दिगंबर जैन मंदिर नमक मंडी में तथा रात्रि में ६.१५ से ७.१५ तक श्री दिगम्बर जैन मंदिर धूलियागंज में प्रवचन हुए। समाज ने अच्छी संख्या में धर्मलाभ लिया।

— पदमचंद जैन

आमोल (म०प्र०) :- दशलक्षण पर्व के अवसर पर दिनांक ६ फरवरी से १३ फरवरी, १९७९ तक श्री सिद्धचक्र मंडल विधान एवं रथयात्रा पंडित हरिप्रसादजी शास्त्री के तत्त्वावधान में सानंद संपन्न हुए। इस अवसर पर पंडित मुरारीलालजी 'मधुर' द्वारा तीन दिन क प्रवचन हुए।

—सतीशचंद जैन

उज्जैन (म०प्र०) :- १ फरवरी से १० फरवरी ७९ तक पर्यूषण पर्व मनाया गया। प्रात: ७ से ९.३० तक वीतराग-विज्ञान पाठशाला के छात्रों द्वारा प्रतिदिन सामूहिक पूजन होती थी। दोनों समय पंडित विमलचंदजी झांझरी के प्रवचन तथा पंडित प्रदीपकुमारजी झांझरी की कक्षाओं से स्थानीय समाज ने अपूर्व लाभ लिया। इसके पूर्व दिनांक २७ एवं २८ जनवरी को पंडित ज्ञानचंदजी पधारे। दोनों दिन मोक्षमार्गप्रकाशक पर आपके आध्यात्मिक प्रवचन हुए।

— सुबोध सिंघई

पिपरई (म०प्र०) :- पंडित रतनचंदजी शास्त्री, संपादक, जैनपथ प्रदर्शक, १० फरवरी ७९ को यहाँ पधारे। आपके 'अष्टपाहुड़' ग्रंथ पर अत्यंत मार्मिक प्रवचन हुए। इससे समाज में काफी धर्मप्रभावना हुई।

— सतीश जैन

जयपुर (राज०) :- स्थानीय नवरंग बाल विद्यालय में पंडित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा वीतराग विज्ञान पाठशाला का उद्घाटन १ फरवरी ७९ को किया गया। विद्यालय के प्रधानाध्यापक श्री नवरतनमलजी इस पाठशाला का संचालन कर रहे हैं।

सिद्धवरकूट (म०प्र०) :- दिनांक ११, १२ एवं १३ मार्च १९७९ को अष्टाह्निका पर्व में तीन दिन का मेला भरेगा। भगवान बाहुबली का महामस्तकाभिषेक, विमानोत्सव, विद्वानों के प्रवचन एवं नंदीश्वर दीप मंडल विधान का आयोजन भी इस अवसर पर किया गया है। साधर्मी भाई अधिक से अधिक संख्या में पधारकर धर्मलाभ लें। **— हुकमचंद जैन, संयोजक**

शिखरजी में प्रवचनों का विशेष आयोजन

फाल्गुन की अष्टाह्निका में ६ मार्च से १३ मार्च, १९७९ तक तेरापंथी कोठी मधुवन में श्रीमान् पंडित बाबूभाई मेहता, डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तथा पंडित ज्ञानचंदजी के आध्यात्मिक प्रवचनों का विशेष आयोजन किया गया है। विस्तृत समाचार अगले अंक में देखिये। **— हेमचंद जैन**

आवश्यकता है - एक ऐसे विद्वान की जो पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित डॉ० हुकमचंद भारिल्ल द्वारा रचित साहित्य का हिन्दी से अंग्रेजी में अनुवाद कर सके। इच्छुक व्यक्ति का अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ जैन साहित्य व अध्यात्म का भी सामान्य ज्ञान अपेक्षित है। **— मंत्री, पंडित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४**

जवाहरगंज, जबलपुर से दुलीचंदजी कौशल लिखते हैं कि 'धर्म के दशलक्षण' पुस्तक ऐसी अपूर्व निधि है जो कि प्रत्येक जिनमंदिर में अवश्य होनी चाहिये। जबलपुर मुमुक्षु मंडल अभी तक उन बीस जिनमंदिरों में उक्त पुस्तक पहुँचा चुका है, जिन्होंने सम्मानपूर्वक उसकी चाह की है।

अन्य मुमुक्षु मंडलों से भी सानुरोध आग्रह है कि वे इसका अनुकरण करें।

अभिमत

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ के नवीनतम प्रकाशन एवं डॉ० हुकमचंद भारिल्ल की कृति 'धर्म के दशलक्षण' पर समीक्षक विद्वानों के महत्त्वपूर्ण अभिमत

*** वयोवृद्ध विद्वान ब्रह्मचारी पंडित मुन्नालालजी रांधेलीय (वर्णी), न्यायतीर्थ, सागर (म०प्र०)**

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित पुस्तक 'धर्म के दशलक्षण' की प्रशंसा पर्याप्त की जा रही है, वह योग्य है, उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। उसको हम दूसरे रूप में लेते हैं। वह प्रशंसा जड़-पुस्तक की नहीं है, अपितु उसके लेखक समाजमान्य चेतनज्ञान-धनी पंडित भारिल्लजी की है। नयी पीढ़ी में पंडितजी जैसे तलस्पर्शी तत्त्वज्ञ विद्वानों की अत्यंत आवश्यकता है, खाली पदवीधारियों (लेबिलों) की नहीं। यद्यपि पंडितजी में और भी अनेक विशेषताऐं (कलाऐं) हैं, तथापि जो तत्काल आवश्यक है वह तर्कणा और प्रतिभा का संगम है, जो सोने में सुगंध है; वह भारिल्लजी में है।

वास्तव में धर्म का स्वरूप और उसके दश अंगों का चित्रण आजकल की भाषा में और आजकल के ढंग (वैज्ञानिक तरीका) में अतीव सुंदर (मनोहारी) किया है, जिसका हम हार्दिक समर्थन करते हैं।

*** सिद्धांतरत्न पंडित नन्हेलालजी, न्यायसिद्धांतशास्त्री, राजाखेड़ा (राज०)**

डॉ० भारिल्ल ने बड़ी गहराई के साथ दशलक्षणों का अपूर्व विवेचन किया है। अभी तक इस विषय में ऐसा सांगोपांग विवेचन अन्यत्र कहीं देखने में नहीं आया है। डॉ० भारिल्ल ने अपने प्रतिभागत तर्क-वितर्क और प्रश्नोत्तर की शैली से पुस्तक को अत्यधिक उपयोगी बना दिया है। डॉ० भारिल्ल के विशुद्ध क्षयोपशम की जितनी तारीफ की जाये कम है। मेरी शुभकामना है कि भारिल्लजी का भविष्य इससे भी अधिक उज्ज्वल और उन्नतिशील बने।

*** पंडित बंशीधरजी शास्त्री, एम०ए०, जयपुर (राज०)**

पहले पंडित सदासुखजी के दशधर्मों पर विवेचन पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। दो-एक अन्य लेखकों के भी पढ़े हैं, किंतु इस पुस्तक में धर्मों पर समीचीन एवं सर्वांगीण विवेचन सहज एवं सरल शैली में किया गया है। इसमें धर्मी की निश्चय-व्यवहार के आधार से सुंदर बोधगम्य परिभाषा निर्धारित की गयी है। दशधर्मों एवं क्षमावाणी के संबंध में कई भ्रांतियों का निरसन युक्तिपूर्ण ढंग से किया गया है। इसप्रकार यह पुस्तक विद्वान एवं साधारण वर्ग के लिये उपयोगी बन गयी है। इसका पठन-पाठन विद्यालय के छात्रों में भी करवाना चाहिये। पर्यूषण पर्व के अतिरिक्त भी इसका नियमित अध्यन प्रत्येक तत्त्वजिज्ञासु को करना चाहिये। ऐसे सुंदर एवं तथ्यपूर्ण विवेचन के प्रकाशन के लिये सभी संबंधित व्यक्ति धन्यवाद के पात्र हैं।

*डॉ० हीरालाल माहेश्वरी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज०)

डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा लिखित 'धर्म के दशलक्षण' पुस्तक पढ़कर अतीव प्रसन्नता हुई। जैनधर्म प्रेमियों के लिये विशेषत: और अध्यात्मप्रेमियों के लिये सामान्यत: यह पुस्तक अत्यंत उपादेय और विचारोत्तेजक है।

प्रबंध संपादक की कलम से

कृपया निम्नलिखित सूचना पर अवश्य ध्यान दें :—

(१) आत्मधर्म के ग्राहकों को इस वर्ष भेंट में मिलने वाली पुस्तक जुलाई माह में भेजी जावेगी। इसके लिये जुलाई के अंक में कूपन रखा जावेगा। जिन बंधुओं का शुल्क जून माह में समाप्त हो रहा है, वे मनिआर्डर फार्म प्राप्त होते ही तत्काल भरकर भेज दें ताकि उनको पुस्तक का लाभ मिल सके।

आत्मधर्म के स्वामित्व का विवरण

फार्म नं० ४, नियम नं० ८

समाचार पत्र का नाम	:	आत्मधर्म (हिन्दी)
प्रकाशन का स्थान	:	ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
प्रकाशक एवं स्वत्वाधिकारी	:	श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़ (सौराष्ट्र, गुजरात)
संपादक	:	डॉ० हुकमचंद भारिल्ल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर ३०२००४
मुद्रक	:	जयपुर प्रिंटर्स, मिर्जा इस्माइल रोड, जयपुर ३०२००१

मैं, डॉ० हुकमचंद भारिल्ल, एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकृत जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं। **– डॉ० हुकमचंद भारिल्ल**

संपादक

आत्मार्थी छात्रों को अपूर्व अवसर

आत्मार्थी छात्र डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में रहकर चारों अनुयोगों के माध्यम से जैन धर्म का सैद्धांतिक अध्ययन कर सकें तथा साथ ही संस्कृत, न्याय, व्याकरण आदि विषयों का आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकें—इस उद्देश्य के फलस्वरूप टोडरमल स्मारक भवन में २४ जुलाई १९७७ से टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय विधिवत् प्रारंभ हो चुका है। अभी २६ आत्मार्थी छात्र अध्ययन कर रहे हैं।

इस वर्ष सिर्फ दस छात्रों को नवीन प्रवेश देना है।

उक्त छात्रों को राजस्थान विश्वविद्यालय की जैनदर्शन-शास्त्री एवं जैनदर्शन-आचार्य परीक्षाऐं दिलाई जाती हैं, जो क्रमशः बी०ए० और एम०ए० के बराबर सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हैं।

शास्त्री का कोर्स ३ वर्ष का है। उसके बाद २ वर्ष का कोर्स आचार्य परीक्षा का है। शास्त्री परीक्षा में प्रवेश के लिये वैकल्पिक विषय संस्कृत लेकर हायर सेकेन्डरी में उत्तीर्ण होना आवश्यक है। जिन छात्रों का हायर सेकेन्डरी में वैकल्पिक विषय संस्कृत न होगा उन्हें एक वर्ष का उपाध्याय कोर्स करना होगा जो कि हायर सेकेन्डरी के समकक्ष है।

उपाध्याय परीक्षा में प्रवेश हेतु, किसी भी वैकल्पिक विषय से हाईस्कूल अथवा हायर सेकेन्डरी (कक्षा दसवीं या ग्यारहवीं) की बोर्ड परीक्षा में कम से कम ५० प्रतिशत अंकों से उत्तीर्ण होना आवश्यक है। आवेदन करते समय वैकल्पिक विषयों सहित अपनी शैक्षणिक योग्यता अवश्य लिखें एवं संबंधित अंकसूची भी भेजें।

उक्त परीक्षाओं के अतिरिक्त वीतराग-विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड जयपुर द्वारा संचालित सभी परीक्षाओं में तथा शास्त्री कक्षा के छात्रों को बंगीय संस्कृत शिक्षा परिषद् द्वारा संचालित न्याय प्रथमा, न्याय मध्यमा और न्यायतीर्थ परीक्षाएँ भी दिलाई जावेंगी।

छात्रों में आध्यात्मिक रुचि उत्पन्न करने हेतु वर्ष में एक या दो बार पूज्य स्वामीजी के सान्निध्य के लाभ हेतु सोनगढ़ ले जाया जायेगा।

टोडरमल स्मारक में ही निरंतर आध्यात्मिक वातावरण प्रदान करने हेतु आदरणीय विद्वद्वर्य पंडित लालचंदभाई मोदी बम्बई, पंडित खीमचंदभाई सोनगढ़, सिद्धांताचार्य पंडित फूलचंद्रजी वाराणसी, पंडित बाबूभाई मेहता फतेपुर, पंडित नेमीचंदजी पाटनी आगरा, पंडित नरेन्द्रकुमारजी भिसीकर शोलापुर, पंडित रतनचंदजी भारिल्ल विदिशा आदि का सान्निध्य प्राप्त होगा। डॉ० हुकमचंदजी भारिल्ल तो यहाँ हैं ही।

इसप्रकार पूरा-पूरा आध्यात्मिक वातावरण मिलेगा।

आवास एवं भोजन की सुविधा निःशुल्क रहेगी।

आगामी सत्र जुलाई १९७९ से प्रारंभ होगा। प्रवेशार्थी शीघ्र ही प्रार्थना-पत्र प्रेषित करें। यदि उन्हें प्रवेश योग्य समझा गया तो उन्हें ग्रीष्मकालीन प्रशिक्षण-शिविर में साक्षात्कार हेतु बुलाया जायेगा।

Registration. No. RJ-2712

हमारे यहाँ प्राप्त प्रकाशन *

मोक्षशास्त्र	१२-००
समयसार	१२-००
समयसार पद्यानुवाद	०-७०
समयसार कलश टीका	६-००
प्रवचनसार	१२-००
पंचास्तिकाय	७-५०
नियमसार	५-५०
नियमसार पद्यानुवाद	०-४०
अष्टपाहुड़	१०-००
समयसार नाटक	७-५०
समयसार प्रवचन भाग १	६-००
समयसार प्रवचन भाग २	प्रेस में
समयसार प्रवचन भाग ३	५-००
समयसार प्रवचन भाग ४	७-००
आत्मावलोकन	३-००
श्रावकधर्म प्रकाश	३-५०
द्रव्यसंग्रह	१-५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०-४०
प्रवचन परमागम	२-५०
धर्म की क्रिया	२-००
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग १	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग २	१-५०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तर माला भाग ३	१-५०
तत्त्वज्ञान तरंगिणी	५-००
अलिंग-ग्रहण प्रवचन	१-६०
वीतराग-विज्ञान भाग ३ (छहढाला पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन)	१-००
बालपोथी भाग १	०-६०
बालपोथी भाग २	प्रेस में
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	४-००
बालबोध पाठमाला भाग १	०-५०
बालबोध पाठमाला भाग २	०-७०
बालबोध पाठमाला भाग ३	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग १	०-७०
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग २	१-००
वीतराग-विज्ञान पाठमालाल भाग ३	१-००
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग १	१-२५
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग २	१-२५
जयपुर (खानियाँ) तत्त्वचर्चा भाग १ व २	३०-००
मोक्षमार्गप्रकाशक	प्रेस में

पंडित टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्तृत्व		१०-००
तीर्थंकर महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ		५-००
" " (पॉकेट बुक साइज में हिन्दी में)		२-००
मैं कौन हूँ?		१-००
तीर्थंकर भगवान महावीर		०-४०
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर		०-२५
अपने को पहचानिए		०-५०
अर्चना (पूजा संग्रह)		०-४०
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ (कैलेंडर)		०-५०
पंडित टोडरमल : जीवन और साहित्य		०-६५
कविवर बनारसीदास : जीवन और साहित्य		०-३०
सत्तास्वरूप		१-७०
सुंदरलेख बालबोध पाठमाला भाग १		प्रेस में
अनेकांत और स्याद्वाद		०-३५
युगपुरुष श्री कानजीस्वामी		१-००
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका		३-००
सत्य की खोज (भाग १)		२-००
आचार्य अमृतचंद्र और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय	साधारण :	२-००
	सजिल्द :	३-००
धर्म के दशलक्षण	साधारण :	४-००
	सजिल्द :	५-००

Licence No.
P. P. 16-S.S.P. Jaipur City Dn.
Licensed to Post
Without Pre-Payment

If undelivered please return to :
प्रबन्ध-संपादक, आत्मधर्म
ए-४, टोडरमल स्मारक भवन, बापूनगर
जयपुर ३०२००४